गुण सुन्दर वृतान्त

-: लेखक :-

वाणीभूषण बा. ब्र. पं. भूरामल शास्त्री

(आचार्य ज्ञानसागर जी)

प्रेरक प्रसंग : प. पू. आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के परमशिष्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज, क्षु. श्री गम्भीरसागरजी, क्षु. श्री धैर्य सागरजी महाराज के ऐतिहासिक १९९४ के श्री सोनी जी की नसियाँ, अजमेर के चातुर्मास के उपलक्ष्य में प्रकाशित ।

ट्रस्ट संस्थापक : स्व. पं. जुगल किशोर मुख्तार

ग्रन्थमाला सम्पादक एवं नियामक : डॉ. दरबारी लाल कोठिया न्यायाचार्य, बीना (मध्य प्रदेश)

संस्करण : द्वितीय

प्रति : 2000

मूल्य : स्वाध्याय

(नोट :- डाक खर्च भेजकर प्रति निशुल्क प्राप्ति स्थान से मंगा सकते है ।

प्राप्ति स्थान :

*** सोनी मंन्दिर ट्रस्ट**
सोनीजी की नसियाँ, अजमेर (राज.)

*** डा. शीतलचन्द जैन**
मंत्री – श्री वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट
१३१४ अजायब घर का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर

*** श्री दिगम्बर जैन मन्दिर अतिशय क्षेत्र**
मन्दिर संघी जी, सांगानेर जयपुर (राज.)

—: आशीर्वाद एवं प्रेरणा :—

मुनि श्री सुधासागरजी महाराज एवं
क्षु. श्री गंभीर सागरजी, एवं क्षु. श्री धैर्य सागरजी महाराज

सौजन्यता :
श्री सुगनचंदजी अशोककुमारजी जैन सरोला वाले
C/o नवीन इलेक्ट्रिकल्स, अजमेर

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन समिति एवं सकल दिगम्बर जैन समाज,
अजमेर (राज.)

प्रकाशन :
वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, जयपुर

मुद्रण एवं लेज़र टाइप सैटिंग :
लिओ ब्लॉक एण्ड प्रिन्टर्स
पुरानी मण्डी, अजमेर फोन 22291

प्रकाशकीय समर्पण

आ. श्री विद्यासागर जी

卐
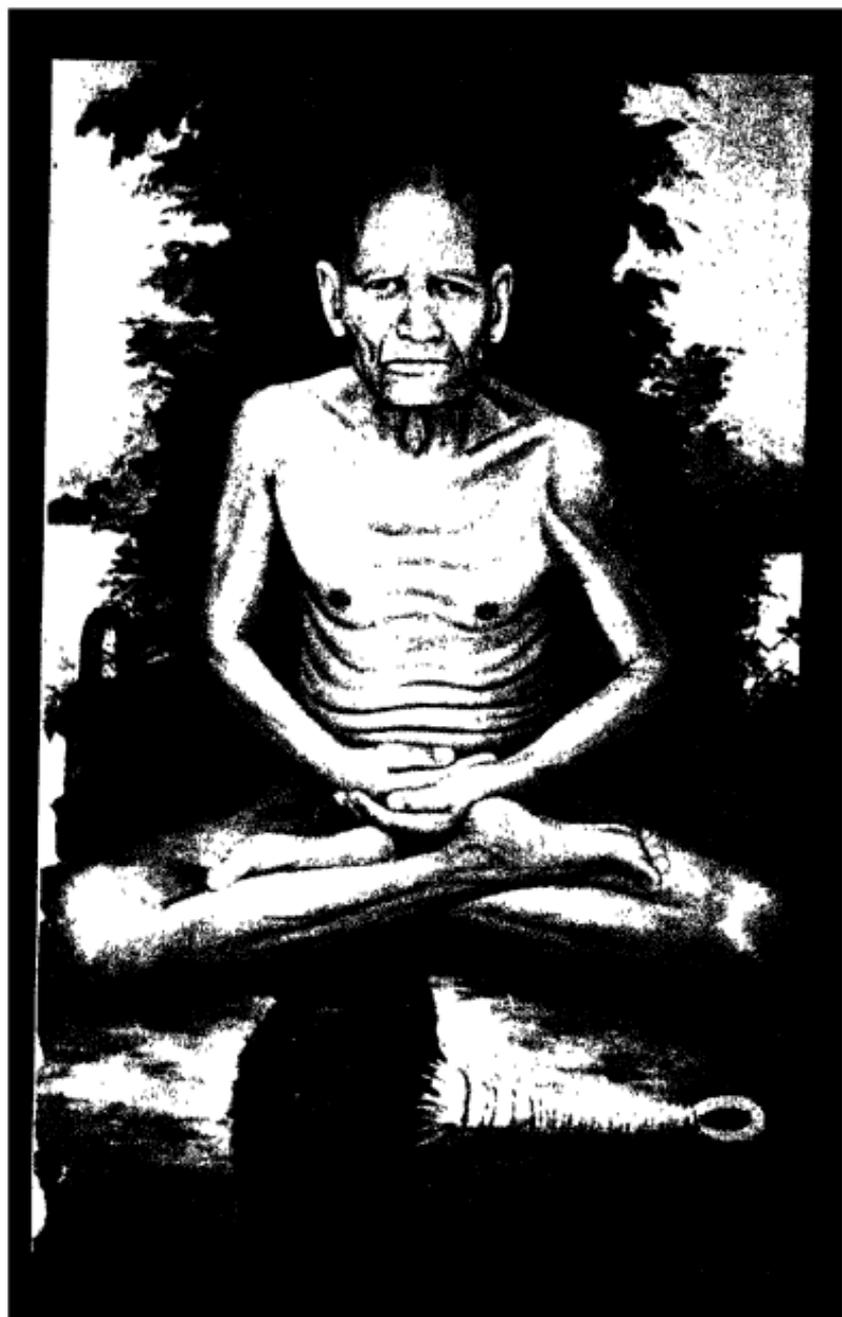
मु. श्री सुधासागर जी

पंचाचार युक्त
महाकवि, दार्शनिक विचारक,
धर्मप्रभाकर, आदर्श चारित्रनायक, कुन्द-कुन्द
की परम्परा के उन्नायक, संत शिरोमणि, समाधि सम्राट,
परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के कर कमलों में
एवं
इनके परम सुयोग्य
शिष्य ज्ञान, ध्यान, तप युक्त
जैन संस्कृति के रक्षक, क्षेत्र जीर्णोद्धारक,
वात्सल्य मूर्ति, समता स्वभावी, जिनवाणी के यथार्थ
उद्घोषक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक संत मुनि
श्री सुधासागर जी महाराज के कर कमलों में
सकल दि. जैन समाज एवं दिगम्बर जैन समिति,
अजमेर (राज.) की ओर से
सादर समर्पित ।

प्रकाशकीय

जैन साहित्य और इतिहास के मर्मज्ञ एवं अनुसंधाता स्वर्गीय सरस्वतीपुत्र पं. जुगल किशोर जी मुख्तार "युगवीर" ने अपनी साहित्य इतिहास सम्बन्धी अनुसन्धान- प्रवृत्तियों को मूर्तरुप देने के हेतु अपने निवास सरवासा (सहारनपुर) में "वीर सेवा मंदिर" नामक एक शोध संस्था की स्थापना की थी और उसके लिए क्रीत विस्तृत भूखण्ड पर एक सुन्दर भवन का निर्माण किया था, जिसका उद्‌घाटन वैशाख सुदि 3 (अक्षय-तृतीया), विक्रम संवत् 1993, दिनांक 24 अप्रैल 1936 में किया था । सन् 1942 में मुख्तार जी ने अपनी सम्पत्ति का "वसीयतनामा" लिखकर उसकी रजिस्ट्री करा दी थी। "वसीयतनामा" में उक्त "वीर सेवा मन्दिर" के संचालनार्थ इसी नाम से ट्रस्ट की भी योजना की थी, जिसकी रजिस्ट्री 5 मई 1951 को उनके द्वारा करा दी गयी थी। इस प्रकार पं. मुख्तार जी ने वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट की स्थापना करके उनके द्वारा साहित्य और इतिहास के अनुसन्धान कार्य को प्रथमत: अग्रसारित किया था ।

स्वर्गीय बा. छोटेलालजी कलकत्ता, स्वर्गीय ला. राजकृष्ण जी दिल्ली, रायसाहब ला. उल्फतरायजी दिल्ली आदि के प्रेरणा और स्वर्गीय पूज्य क्षु. गणेश प्रसाद जी वर्णी (मुनि गणेश कीर्ति महाराज) के आशीर्वाद से सन् 1948 में श्रद्धेय मुख्तार साहब ने उक्त वीर सेवा मन्दिर का एक कार्यालय उसकी शाखा के रुप में दिल्ली में,उसके राजधानी होने के कारण अनुसन्धान कार्य को अधिक व्यापकता और प्रकाश मिलने के उद्देश्य से, राय साहब *ला.उल्फतरयजी के चैत्यालय में खोला था।पश्चात् बा. छोटे लालजी,साहू शान्तिप्रसादजी* और समाज की उदारतापूर्ण आर्थिक सहायता से उसका भवन भी बन गया, जो 21 दरियागंज दिल्ली में स्थित है और जिसमें "अनेकान्त" (मासिक) का प्रकाशन एवं अन्य साहित्यिक कार्य सम्पादित होते हैं । इसी भवन में सरसावा से ले जाया गया विशाल ग्रन्थागार है, जो जैनविद्या के विभिन्न अङ्गो पर अनुसन्धान करने के लिये विशेष उपयोगी और महत्वपूर्ण है ।

वीर-सेवा मन्दिर ट्रस्ट गंथ-प्रकाशन और साहित्यानुसन्धान का कार्य कर रहा है । इस ट्रस्ट के समर्पित वयोवृद्ध पूर्व मानद मंत्री एवं वर्तमान में अध्यक्ष डा. दरबारी लालजी कोठिया बीना के अथक परिश्रम एवं लगन से अभी तक ट्रस्ट से 38 महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है । आदरणीय कोठियाजी के ही मार्गदर्शन में ट्रस्ट का संपूर्ण कार्य चल रहा है । अत: उनके प्रति हम हृदय से कृतज्ञता व्यक्त करते हैं और कामना करते हैं कि वे दीर्घायु होकर अपनी सेवाओं से समाज को चिरकाल तक लाभान्वित करते रहें। ट्रस्ट के समस्त सदस्य एवं कोषाध्यक्ष माननीय श्री चन्द संगल एटा, तथा संयुक्त मंत्री ला.सुरेशचन्द्र जैन सरसावा का सहयोग उल्लेखनीय है । एतदर्थ वे धन्यवादार्ह हैं ।

संत शिरोमणि आचार्य विद्यासागरजी के परम शिष्य पूज्य मुनि 108 सुधासागर जी महाराज के आर्शीवाद एवं प्रेरणा से दिनांक 9 से 11 जून 1994 तक श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघीजी सागांनेर में आचार्य विद्यासागरजी के गुरु आचार्य प्रवर ज्ञानसागरजी महाराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व परअखिल भारतीय विद्वत संगोष्ठी का आयोजन किया गया था। इस संगोष्ठी में निश्चय किया था कि आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज के समस्त ग्रन्थों का प्रकाशन किसी प्रसिद्ध संस्था से किया जाय । तदनुसार समस्त विद्वानों की सम्मति से यह कार्य वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट ने सहर्ष स्वीकार कर सर्वप्रथम वीरोदयकाव्य के प्रकाशन की योजना बनाई और निश्चय किया कि इस काव्य पर आयोजित होने वाली गोप्ठी के पूर्व इसे प्रकाशित कर दिया जाय । परम हर्ष है कि पूज्य मुनि 108 सुधासागार महाराज का संसघ चातुर्मास अजमेर में होना निश्चय हुआ और महाराज जी के प्रवचनों से प्रभावित होकर श्री दिगम्बर जैन समिति एवम् सकल दिगम्बर जैन समाज अजमेर ने पूज्य आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज के वीरोदय काव्य सहित समस्त ग्रन्थों के प्रकाशन एवं संगोप्ठी का दायित्व स्वयं ले लिया और ट्रस्ट को आर्थिक निर्भार कर दिया । एतदर्थ ट्रस्ट अजमेर समाज का इस जिनवाणी के प्रकाशन एवं ज्ञान के प्रचार प्रसार के लिये आभारी है ।

प्रस्तुत कृति **गुण सुन्दर वृतान्त** के प्रकाशन में जिन महानुभाव ने आर्थिक सहयोग एवं प्रूफ रिडिंग में श्री कमलचन्दजी बड़जात्या ने अथक

परिश्रम किया तथा मुद्रण में निओ ब्लॉक एण्ड प्रिन्ट्स ने उत्साह पूर्वक कार्य किया है। वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं ।

अन्त में उस संस्था के भी आभारी है जिस संस्था ने पूर्व में यह ग्रन्थ प्रकाशित किया था । अब यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है । अतः ट्रस्ट इसको प्रकाशित कर गौरवान्वित है । जैन जयतुं शासनम् ।

दिनाङ्क : 13-14-15 अक्टूबर 1994
वीरोदय महाकाव्य पर अ. भा. विद्वत संगोष्ठी

डॉ. शीतल चन्द जैन
मानद मंत्री
वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट
1314 अजायब घर का रास्ता
किशनपोल बाजार, जयपुर

आचार्य श्री ज्ञानसागर जी की जीवन यात्रा आँखों देखी

आलेख - निहाल चन्द्र जैन
सेवा निवृत्त प्राचार्य
मिश्रसदन सुन्दर विलास, अजमेर

प्राचीन काल से ही भारत वसुन्धरा ने अनेक महापुरुषों एवं नर-पुंगवों को जन्म दिया है । इन नर-रत्नों ने भारत के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं शौर्यता के क्षेत्र में अनेकों कीर्तिमान स्थापित किये हैं । जैन धर्म भी भारत भूमि का एक प्राचीन धर्म हैं, जहाँ तीर्थंकर, श्रुत केवली, केवली भगवान के साथ साथ अनेकों आचार्यों, मुनियों एवं सन्तों ने इस धर्म का अनुसरण कर मानव समाज के लिए मुक्ति एवं आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है ।

इस १९-२० शताब्दी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य परम पूज्य, चारित्र चक्रवर्ती आचार्य १०८ श्री शांतिसागर जी महाराज थे जिनकी परम्परा में आचार्य श्री वीर सागरजी, आचार्य श्री शिव सागरजी इत्यादि तपस्वी साधुगण हुये । मुनि श्री ज्ञान सागरजी आचार्य श्री शिवसागर जो महाराज से वि. स. २०१६, में खानियाँ (जयपुर) में मुनि दीक्षा लेकर अपने आत्मकल्याण के मार्ग पर आरूढ़ हो गये थे । आप शिवसागर आचार्य महाराज के प्रथम शिष्य थे।

मुनि श्री ज्ञान सागर जी का जन्म राणोली ग्राम (सीकर-राजस्थान) में दिगम्बर जैन के छाबड़ा कुल में सेठ सुखदेवजी के पुत्र श्री चतुर्भुज जी की धर्म पत्नि घृतावरी देवी की कोख से हुआ था । आपके बड़े भ्राता श्री छगनलालजी थे तथा दो छोटे भाई और थे तथा एक भाई का जन्म तो पिता श्री के देहान्त के बाद हुआ था । आप स्वयं भूरामल के नाम से विख्यात हुये । प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के प्राथमिक विद्यालय में हुई । साधनों के अभाव में आप आगे विद्याध्ययन न कर अपने बड़े भाई जी के साथ नौकरी हेतु गयाजी (बिहार) आगये । वहां १३-१४ वर्ष की आयु में एक जैनी सेठ के दुकान पर आजीविका हेतु कार्य करते रहे । लेकिन आपका मन आगे पढ़ने के लिए छटपटा रहा था । संयोगवश स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी के छात्र किसी समारोह में भाग लेने हेतु गयाजी (बिहार) आये । उनके प्रभावपूर्ण कार्यक्रमों को देखकर युवा भूरामल के भाव भी विद्या प्राप्ति हेतु

वाराणसी जाने के हुए । विद्या-अध्ययन के प्रति आपकी तीव्र भावना एवं दृढ़ता देखकर आपके बड़े भ्राता ने १५ वर्ष की आयु में आपको वाराणसी जाने की स्वीकृति प्रदान कर दी ।

श्री भूरामल जी बचपन से ही कठिन परिश्रमी अध्यवसायी, स्वावलम्बी, एवं निष्ठावान थे । वाराणसी में आपने पूर्ण निष्ठा के साथ विद्याध्ययन किया और संस्कृत एवं जैन सिद्धान्त का गहन अध्ययन कर शास्त्री परीक्षा पास की । जैन धर्म से संस्कारित श्री भूरामल जी न्याय, व्याकरण एवं प्राकृत ग्रन्थों को जैन सिद्धान्तानुसार पढ़ना चाहते थे, जिसकी उस समय वाराणसी में समुचित व्यवस्था नहीं थी । आपका मन शुब्ध ही उठा, परिणामतः आपने जैन साहित्य, न्याय और व्याकरण को पुनःर्जीवित करने का भी दृढ़ संकल्प ही लिया । अढ़िग विश्वास, निष्ठा एवं संकल्प के धनी श्री भूरामल जी ने कई जैन एवं जैनेन्तर विद्वानों से जैन वाँङ्गमय की शिक्षा प्राप्त की । वाराणसी में रहकर ही आपने स्याद्‌वाद महाविद्यालय से "शास्त्री" की परीक्षा पास कर आप पं. भूरामल जी नाम से विख्यात हुए । वाराणसी में ही आपने जैनाचार्यों द्वारा लिखित न्याय, व्याकरण, साहित्य, सिद्धान्त एवं अध्यात्म विषयों के अनेक ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया ।

बनारस से लौट कर आपने अपने ही ग्रामीण विद्यालय में अवैतनिक अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया, लेकिन साथ में, निरन्तर साहित्य साधना एवं साहित्य लेखन के कार्य में भी अग्रसर होते गये। आपकी लेखनी से एक से एक सुन्दर काव्यकृतियाँ जन्म लेती रही । आपकी तरुणाई विद्वता और आजीविकोपार्जन की क्षमता देखकर आपके विवाह के लिए अनेकों प्रस्ताव आये, सगे सम्बन्धियों ने भी आग्रह किया। लेकिन आपने वाराणसी में अध्ययन करते हुए ही संकल्प ले लिया था कि आजीवन ब्रह्मचारी रहकर माँ सरस्वती और जिनवाणी की सेवा में, अध्ययन-अध्यापन तथा साहित्य सृजन में ही अपने आपको समर्पित कर दिया । इस तरह जीवन के ५० वर्ष साहित्य साधना, लेखन, मनन एवं अध्ययन में व्यतीत कर पूर्ण पांडित्य प्राप्त कर लिया । इसी अवधि में आपने दयोदय, भद्रोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय आदि साहित्यिक रचनायें संस्कृत तथा हिन्दी भाषा में प्रस्तुत की वर्तमान शताब्दी में संस्कृत भाषा के महाकाव्यों की रचना की परम्परा को जीवित रखने वाले मूर्धन्य विद्वानों में आपका नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । काशी के दिग्गज विद्वानों की प्रतिक्रिया थी "इसकाल में भी कालीदास और माघकवि की टक्कर लेने वाले विद्वान हैं, यह जानकर प्रसन्नता होती हैं ।" इस तरह पूर्ण उदासीनता के साथ, जिनवाणी माँ की अविरत सेवा में आपने गृहस्थाश्रम में ही जीवन के ५० वर्ष पूर्ण किये । जैन सिद्धान्त के हृदय को आत्मसात

करने हेतु आपने सिद्धान्त ग्रन्थों श्री धवल, महाधवल जयधवल महाबन्ध आदि ग्रन्थों का विधिवत् स्वाध्याय किया । "ज्ञान भारं क्रिया बिना" क्रिया के बिना ज्ञान भार- स्वरूप है - इस मंत्र को जीवन में उतारने हेतु आप त्याग मार्ग पर प्रवृत्त हुए ।

सर्वप्रथम ५२ वर्ष की आयु में सन् १९४७ में आपने अजमेर नगर में ही आचार्य श्री वीर सागरजी महाराज से सप्तम प्रतिमा के व्रत अंगीकार किये । ५४ वर्ष की आयु में आपने पूर्णरूपेण गृहत्याग कर आत्मकल्याण हेतु जैन सिद्धान्त के गहन अध्ययन में लग गये। सन् १९५५ में ६० वर्ष की आयु में आपने आचार्य श्री वीर सागरजी महाराज से ही रेनवाल में क्षुल्लक दीक्षा लेकर ज्ञानभूषण के नाम से विख्यात हुए । सन् १९५९ में ६२ वर्ष की आयु में आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से खानियाँ (जयपुर) में मुनि दीक्षा अंगीकार कर १०८ मुनि श्री ज्ञानसागरजी के नाम से विभूषित हुए । और आपको आचार्य श्री का प्रथम शिष्य होने का गौरव प्राप्त हुआ । संघ में आपने उपाध्याय पद के कार्य को पूर्ण विद्वत्ता एवं सजगता के साथ सम्पन्न किया । रूढ़िवाद से कोसों दूर मुनि ज्ञानसागर जी ने मुनिपद की सरलता और गंभीरता को धारण कर मन, वचन और कायसे दिगम्बरत्व की साधना में लग गये। दिन रात आपका समय आगमानुकूल मुनिचर्या की साधना, ध्यान अध्ययन-अध्यापन एवं लेखन में व्यतीत होता रहा । फिर राजस्थान प्रान्त में ही विहार करने निकल गये । उस समय आपके साथ मात्र दो-चार त्यागी व्रती थे, विशेष रूप से ऐलक श्री सन्मतिसागर जी, क्षुल्लक श्री संभवसागर जी व सुख सागरजी तथा एक-दो ब्रह्मचारी थे । मुनि श्री उच्च कोटि के शास्त्र-ज्ञाता, विद्वान एवं तात्विक वक्ता थे । पंथ वाद से दूर रहते हुए आपने सदा जैन सिद्धान्तों को जीवन में उतारने की प्रेरणा दी और एक सद्गृहस्थ का जीवन जीने का आह्वान किया।

विहार करते हुए आप मदनगंज-किशनगढ़, अजमेर तथा ब्यावर भी गये । ब्यावर में पंडित हीरा लालजी शास्त्री ने मुनि श्री को उनके द्वारा लिखित ग्रन्थों एवं पुस्तकों को प्रकाशित कराने की बात कही, तब आपने कहा "जैन वाँगमय की रचना करने का काम मेरा है, प्रकाशन आदि का कार्य आप लोगों का है" ।

जब सन् १९६७ में आपका चातुर्मास मदनगंज किशनगढ़ में हो रहा था, तब जयपुर नगर के चूलगिरि क्षेत्र पर आचार्य देश भूषण जी महाराज का वर्षा योग चल रहा था । चूलगिरी का निर्माण कार्य भी आपकी देखरेख एवं संरक्षण में चल रहा था। उसी समय सदलगा ग्रामनिवासी, एक कन्नड़-भाषी नवयुवक आपके पास ज्ञानार्जन हेतु आया । आचार्य देशभूषण जी की

आँखों ने शायद उस नवयुवक की भावना को पढ़ लिया था, सो उन्होंने उस नवयुवक विद्याधर को आशीर्वाद प्रदान कर ज्ञानार्जन हेतु मुनिवर ज्ञानसागर जी के पास भेज दिया । जब मुनि श्री ने नौजवान विद्याधर में ज्ञानार्जन की एक तीव्र कसक एवं ललक देखी तो मुनि श्री ने पूछ ही लिया कि अगर विद्यार्जन के पश्चात छोडकर चले जावोगे तो मुनि तो का परिश्रम व्यर्थ जायेगा। नौजवान विद्याधर ने तुरन्त ही दृढ़ता के साथ आजीवन सवारी का त्याग कर दिया । इस त्याग भावना से मुनि ज्ञान सागरजी अत्यधिक प्रभावित हुए और एक टक-टकी लगाकर उस नौजवान की मनोहारी, गौरवर्ण तथा मधुर मुस्कान के पीछे छिपे हुए दृढ़-संकल्प को देखते ही रह गये ।

शिक्षण प्रारम्भ हुआ । योग्य गुरू के योग्य शिष्य विद्याधर ने ज्ञानार्जन में कोई कसर नहीं छोड़ी । इसी बीच उन्होंने अखंड ब्रह्मचर्य्य व्रत को भी धारण कर लिया । ब्रह्मचारी विद्याधर की साधना प्रतिमा, तत्परता तथा ज्ञान के क्षयोपशम को देखकर गुरू ज्ञानसागर जी इतने प्रभावित हुए कि, उनकी कड़ी परीक्षा लेने के बाद, उन्हें मुनिपद ग्रहण करने की स्वीकृति दे दी । इस कार्य को सम्पन्न करने का सौभाग्य मिला अजमेर नगर को और सम्पूर्ण जैन समाज को । ३० जून १९६८ तदानुसार आषाढ़ शुक्ला पंचमी को ब्रह्मचारी विद्याधर की विशाल जन समुदाय के समक्ष जैनश्वरी दीक्षा प्रदान की गई और विद्याधर, मुनि विद्यासागर के नाम से सुशोभित हुए । उस वर्ष का चातुर्मास अजमेर में ही सम्पन्न हुआ ।

तत्पश्चात मुनि श्री ज्ञानसागर जी का संघ विहार करता हुआ नसीराबाद पहुँचा। यहाँ आपने ७ फरवरी १९६९ तदानुसार मगसरबदी दूज को श्री लक्ष्मी नारायण जी को मुनि दीक्षा प्रदान कर मुनि १०८ श्री विवेकसागर नाम दिया इसी पुनीत अवसर पर समस्त उपस्थित जैन समाज द्वारा आपको आचार्य पद से सुशोभित किया गया ।

आचार्य ज्ञानसागर जी की हार्दिक अभिलाषा थी कि उनके शिष्य उनके सान्निध्य में अधिक से अधिक ज्ञार्नाजन कर ले । आचार्य श्री अपने ज्ञान के अथाह सागर को समाहित कर देना चाहते थे विद्या के सागर में और दोनों ही गुरू-शिष्य उतावले थे एक दूसरे में समाहित होकर ज्ञानामृत का निरन्तर पान करने और कराने में । आचार्य ज्ञानसागर जी सच्चे अर्थों में एक विद्वान-जौहरी और पारखी थे तथा बहुत दूर दृष्टि वाले थे । उनकी काया निरन्तर क्षीण होती जा रही थी । गुरू और शिष्य की जैन सिद्धान्त एवं वांगमय की आराधना, पठन, पाठन एवं तत्वचर्चा-परिचर्चा निरन्तर अबाधगति से चल रही थी ।

तीन वर्ष पश्चात १९७२ में आपके संघ का चातुर्मास पुनः नसीराबाद में हुआ। अपने आचार्य गुरू की गहन अस्वस्थ्यता में उनके परम सुयोग्य शिष्य मुनि श्री विद्यासागर जी ने पूर्ण निष्ठा और निस्पृह भाव से इतनी सेवा की कि शायद कोई लखपती बाप का बेटा भी इतनी निष्ठा और तत्परता के साथ अपने पिता श्री की सेवा कर पाता । कानों सुनी बात तो एक बार झूंठी हो सकती है लेकिन आँखो देखी बात को तो शत प्रतिशत सत्य मान कर ऐसी उत्कृष्ट गुरू भक्ति के प्रति नतमस्तक होना ही पड़ता है।

चातुर्मास समाप्ति की ओर था । आचार्य श्री ज्ञानसागर जी शारीरिक रुप से काफी अस्वस्थ्य एवं क्षीण हो चुके थे । साइटिका का दर्द कम होने का नाम ही नहीं ले रहा था दर्द की भयंकर पीड़ा के कारण आचार्य श्री चलने फिरने में असमर्थ होते जा रहे थे । १६-१७ मई १९७२ की बात है - आचार्य श्री ने अपने योग्यतम शिष्य मुनि विद्यासागर से कहा "विद्यासागर! मेरा अन्त समीप है । मेरी समाधि कैसे सधेगी ?

इसी बीच एक महत्वपूर्ण घटना नसीराबाद प्रवास के समय घटित हो चुकी थी । आचार्य श्री के देह-त्याग से करीब एक माह पूर्व ही दक्षिण प्रान्तोय मुनि श्री पार्श्वसागर जी आचार्य श्री की निर्विकल्प समाधि में सहायक होने हेतु नसीराबाद पधार चुके थे । वे कई दिनों से आचार्य श्री ज्ञानसागरजी की सेवा सुश्रुषा एवं वैय्यावृत्ति कर अपने जीवन को सार्थक बनाना चाहते थे। नियति को कुछ और ही मंजूर था। १५ मई १९७२ को पार्श्वसागर महाराज को शारीरिक व्याधि उत्पन्न हुई और १६ मई को प्रातःकाल करीब ७ बजकर ४५ मिनिट पर अरहन्त, सिद्ध का स्मरण करते हुए वे इस नश्वर देह का त्याग कर स्वर्गारोहण हो गये । अत: अब यह प्रश्न आचार्य ज्ञानसागर जी के सामने उपस्थित हुआ कि समाधि हेतु आचार्य पद का परित्याग तथा किसी अन्य आचार्य की सेवा में जाने का आगम में विधान है । आचार्य श्री के लिए इस भंयकर शारीरिक उत्पीडन की स्थिति में किसी अन्य आचार्य के पास जाकर समाधि लेना भी संभव नहीं था। आचार्य श्री ने अन्ततोगत्वा अपने शिष्य मुनि श्री विद्यासागर जी को कहा "मेरा शरीर आयु कर्म के उदय से रत्नत्रय- आराधना में शनैः शनैः कृश हो रहा है। अतः मैं यह उचित समझता हूँ कि शेष जीवन काल में आचार्य पद का परित्याग कर इस पद पर अपने प्रथम एवं योग्यतम शिष्य को पदासीन कर दूं। मेरा विश्वास है कि आप श्री जिनशासन सम्वर्धन एवं श्रमण संस्कृति का संरक्षण करते हुए इस पदकी गरिमा को बनाये रखोगे तथा संघ का कुशलता पूर्वक संचालन करसमस्त समाज को सही दिशा प्रदान करोगे।" जब मुनि श्री विद्यासागरजी ने इस महान भार को उठाने में, ज्ञान, अनुभव और उम्र से अपनी लघुता

प्रकट की तो आचार्य ज्ञान सागरजी ने कहा "तुम मेरी समाधि साध दो, आचार्य पद स्वीकार करलो। फिर भी तुम्हें संकोच है तो गुरु दक्षिणा स्वरुप ही मेरे इस गुरुत्तर भार को धारण कर मेरी निर्विकल्प समाधि करादो- अन्य उपाय मेरे सामने नहीं है।"

मुनि श्री विद्यासागर जी काफी विचलित हो गये, काफी मंथन किया, विचार-विमर्श किया और अन्त में निर्णय लिया कि गुरु दक्षिणा तो गुरु को हर हालत में देनी ही होगी । और इस तरह उन्होंने अपनी मौन स्वीकृति गुरु चरणों से समर्पित कर दी ।

अपनी विशेष आभा के साथ २२ नवम्बर १९७२ तदानुसार मगसर बदी दूज का सूर्योदय हुआ। आज जिन शासन के अनुयायिओं को साक्षात् एक अनुपम एवं अद्भुत दृश्य देखने को मिला । कल तक जो श्री ज्ञान सागरजी महाराज संघ के गुरु थे, आचार्य थे, सर्वोपरि थे, आज वे ही साधु एवं मानव धर्म की पराकाष्ठा का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करने जा रहे थे. यह एक विस्मयकारी एवं रोमांचक दृश्य था, मुनि की संज्वलन कषाय की मन्दता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण था । आगमानुसार आचार्य श्री ज्ञानसागरजी ने आचार्य पदत्याग की घोषणा की तथा अपने सर्वोत्तम योग्य शिष्य मुनि श्री विद्यासागरजी को समाज के समक्ष अपना गुरुत्तर भार एवं आचार्य पद देने की स्वीकृति मांगकर, उन्हें आचार्य पद से विभूषित किया । जिस बड़े पट्टे पर आज तक आचार्य श्री ज्ञानसागर जी आसीन होते थे उससे वे नीचे उतर आये और मुनि श्री विद्यासागरजी को उस आसन पर पदासीन किया। जन-समुदाय की आँखे सुखानन्द के आँसुओं से तरल हो गई । जय घोष से आकाश और मंदिर का प्रागंण गूंज उठा। आचार्य श्री विद्यासागर जी ने अपने गुरु के आदेश का पालन करते हुये पूज्य गुरुवर की निर्विकल्प समाधि के लिए आगमानुसार व्यवस्था की। गुरु ज्ञानसागरजी महाराज भी परम शान्त भाव से अपने शरीर के प्रति निर्ममत्व होकर रस त्याग की ओर अग्रसर होते गये।

आचार्य श्री विद्यासागरजी ने अपने गुरु की संलेखना पूर्वक समाधि कराने में कोई कसर नहीं छोडी । रात दिन जागकर एवं समयानुकूल सम्बोधन करते हुए आचार्य श्री ने मुनिवर की शांतिपूर्वक समाधि कराई । अन्त में समस्त आहार एवं जल का त्यागोपरान्त मिती जेष्ठ कृष्णा अमावस्या वि. स. २०३० तदनानुसार शुक्रवार दिनांक १ जून १९७३ को दिन में १० बजकर ५० मिनिट पर गुरु ज्ञानसागर जी इस नश्वर शरीर का त्याग कर आत्मलीन हो गये । और दे गये समस्त समाज को एक ऐसा सन्देश कि अगर सुख,शांति

और निर्विकल्प समाधि चाहते हो तो कषायों का शमन कर रत्नत्रय मार्ग पर आढू हो जाओ, तभी कल्याण संभव है ।

इस प्रकार हम कह सकते है कि आचार्य ज्ञानसागरजी का विशाल कृत्तित्व और व्यक्तित्व इस भारत भूमि के लिए सरस्वती के वरद पुत्रता की उपलब्धि कराती है। इनके इस महान साहित्य सृजनता से अनेकानेक ज्ञान पिपासुओं ने इनके महाकाव्यों परशोध कर डाक्टर की उपाधि प्राप्त कर अपने आपको गौरवान्वित किया है। आचार्य श्री के साहित्य की सुरभि वर्तमान में सारे भारत में इस तरह फैल कर विद्वानों को आकर्षित करने लगी है कि समस्त भारतवर्षीय जैन अजैन विद्वानों का ध्यान उनके महाकाव्यों की ओर गया है। परिणामतः आचार्य श्री ज्ञानसागरजी की ही संघ परम्परा के प्रथम आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के परम सुयोग्य शिष्य, प्रखर प्रवचन प्रवक्ता, मुनि श्री १०८ श्री सुधासागर जी महाराज के सान्निध्य में प्रथम बार "आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के कृत्तित्व एवं व्यक्तित्व पर ९-१०-११ जून १९९४ को महान अतिशय एवं चमत्कारिक क्षेत्र, सांगानेर (जयपुर) में संगोष्ठी आयोजित करके आचार्य ज्ञानसागरजी के कृत्तित्व को सरस्वती की महानतम साधना के रूप में अंकित किया था, उसे अखिल भारतवर्षीय विद्वत्त समाज के समक्ष उजागर कर विद्वानों ने भारतवर्ष के सरस्वती पुत्र का अभिनन्दन किया है। इस संगोष्ठी में आचार्य श्री के साहित्य-मंथन से जो नवनीत प्राप्त हुवा, उस नवनीत की स्निगधता से सम्पूर्ण विद्वत्त मण्डल इतना आनन्दित हुआ कि पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी के सामने अपनी अतरंग भावना व्यक्त की, कि- पूज्य ज्ञानसागरजी महाराज के एक एक महाकाव्य पर एक एक संगोष्ठी होना चाहिए, क्योंकि एक एक काव्य में इतने रहस्मय विषय भरे हुए हैं कि उनके समस्त साहित्य पर एक संगोष्ठी करके भी उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता । विद्वानों की यह भावना तथा साथ में पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के दिल में पहले से ही गुरु नाम गुरु के प्रति,स्वभावतः कृतित्व और व्यक्तित्व के प्रति प्रभावना बैठी हुई थी, परिणामस्वरुप सहर्ष ही विद्वानों और मुनि श्री के बीच परामर्श एवं विचार विमर्श हुआ और यह निर्णय हुआ कि आचार्य श्री ज्ञानसागरजी के पृथक पृथक महाकाव्य पर पृथक पृथक रुप से अखिल भारतवर्षीय संगोष्ठी आयोजित की जावे । उसी समय विद्वानों ने मुनि श्री सुधासागर जी के सान्निध्य मे बैठकर यह भी निर्णय लिया कि आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज का समस्त साहित्य पुनः प्रकाशित कराकर विद्वानों को, पुस्तकालयों और विभिन्न स्थानों के मंदिरों को उपलब्ध कराया जावे।

साथ में यह भी निर्णय लिया गया कि द्वितीय संगोष्ठी में वीरोदय महाकाव्य को विषय बनाया जावे । इस महाकाव्य में से लगभग ५० विषय

पृथक पृथक रुप से छाँटे गये, जो पृथक पृथक मूर्धन्य विद्वानों के लिए आलेखित करने हेतु प्रेषित किये गये है। आशा है कि निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार मुनि श्री के ही सान्निध्य में द्वितीय अखिल भारतवर्षीय विद्वत्त संगोष्ठी वीरोदय महाकाव्य पर माह अक्टूबर ९४ मे अजमेर में सम्पन्न होने जा रही है जिसमें पूज्य मुनि श्री का संरक्षण, नेतृत्व एवं मार्गदर्शन सभी विद्वानों को निश्चित रुप से मिलेगा ।

हमारे अजमेर समाज का भी परम सौभाग्य है कि यह नगर आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज की साधना स्थली एवं उनके परम सुयोग्य शिष्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज की दीक्षा स्थली रही है । अजमेर के सातिशय पुण्य के उदय के कारण हमारे आराध्य पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज ने अपने परम सुयोग्य शिष्य, प्रखर प्रवक्ता, तीर्थोद्धारक, युवा मनिषी, पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज, पूज्य क्षुल्लक १०५ श्री गंभीर सागरजी एवं पूज्य क्षुल्लक १०५ श्री धैर्य सागर जी महाराज को, हम लोगों की भक्ति भावना एवं उत्साह को देखते हुए इस संघ को अजमेर चातुर्मास करने की आज्ञा प्रदान कर हम सबको उपकृत किया है ।

परम पूज्य मुनिराज श्री सुधासागरजी महाराज का प्रवास अजमेर समाज के लिए एक वरदान सिद्ध हो रहा है । आजतक के पिछले तीस वर्षों के इतिहास में धर्मप्रेमी सज्जनों व महिलाओं का इतना जमघट, इतना समुदाय देखने को नहीं मिला जो एक मुनि श्री के प्रवचनों को सुनने के लिए समय से पूर्व ही आकर अपना स्थान ग्रहण कर लेते हैं । सोनी जी की नसियाँ मे प्रवचन सुनने वाले जैन-अजैन समुदाय की इतनी भीड़ आती हैं कि तीन-तीन चार-चार स्थानों पर "क्लोज-सर्किट टी.वी." लगाने पड़ रहे हैं। श्रावक संस्कार शिविर जो पर्यूषण पर्व में आयोजित होने जा रहा है। अपने आपकी एक एतिहासिक विशिष्ठता है । अजमेर समाज के लिए यह प्रथम सौभाग्यशाली एवं सुनहरा अवसर होगा जब यहाँ के बाल-आबाल अपने आपको आगमानुसार संस्कारित करेंगे ।

महाराज श्री के व्यक्तित्व का एवं प्रभावपूर्ण उद्‌बोधन का इतना प्रभाव पड़ रहा है कि दान दातार और धर्मप्रेमी निष्ठावान व्यक्ति आगे बढ़कर महाराज श्री के सानिध्य में होने वाले कार्यक्रमों को मूर्त रुप देना चाहते हैं । अक्टूबर माह के मध्य अखिल भारतवर्षीय विद्वत-संगोष्ठी का आयोजन भी एक विशिष्ठ कार्यक्रम है जिसमें पूज्य आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज के द्वारा रचित वीरोदय महाकाव्य के विभिन्न विषयों पर ख्याति प्राप्त विद्वान अपने आलेख का वाचन करेंगे। काश यदि पूज्य मुनिवर सुधासागरजी महाराज

का संसघ यहाँ अजमेर में पर्दापण न हुआ होता तो हमारा दुर्भाग्य किस सीमा तक होता, विचारणीय है ।

पूज्य मुनिश्री के प्रवचनों का हमारे दिल और दिमाग पर इतना प्रभाव हुआ कि सम्पूर्ण दिगम्बर समाज अपने वर्ग विशेष के भेदभावों को भुलाकर जैन शासन के एक झंडे के नीचे आ गये । यहीं नहीं हमारी दिगम्बर जैन समिति ने समाज की ओर से पूज्य आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज के समस्त साहित्य का पुनः प्रकाशन कराने का संकल्प मुनिश्री के सामने व्यक्त किया । मुनि श्री का आशीर्वाद मिलते ही समाज के दानवीर लोग एक एक पुस्तक को व्यक्तिगत धनराशि से प्रकाशित कराने के लिए आगे आये ताकि वे अपने राजस्थान में ही जन्मे सरस्वती-पुत्र एवं अपने परमेष्ठी के प्रति पूजांजली व्यक्त कर अपने जीवन में सातिशय पुण्य प्राप्त कर तथा देव, शास्त्र, गुरु के प्रति अपनी आस्था को बलवती कर अपना अपना आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सके।

इस प्रकार आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के साहित्य की आपूर्ति की समस्या की पूर्ती इस चातुर्मास में अजमेर समाज ने सम्पन्न की है उसके पीछे एक ही भावना है कि अखिल भारतवर्षीय जन मानस एवं विद्वत जन इस साहित्य का अध्ययन, अध्यापन कर सृष्टी की तात्विक गवेषणा एवं साहित्यक छटा से अपने जीवन को सुरभित करते हुए कृत कृत्य कर सकेंगे।

इसी चातुर्मास के मध्य अनेकानेक सामाजिक एवं धार्मिक उत्सव भी आयेगें जिस पर समाज को पूज्य मुनि श्री से सारगर्भित प्रवचन सुनने का मौका मिलेगा । आशा है इस वर्ष का भगवान महावीर का निर्वाण महोत्सव एवं पिच्छिका परिवर्तन कार्यक्रम अपने आप में अनूठा होगा । जो शायद पूर्व की कितनी ही परम्पराओं से हटकर होगा ।

अन्त में श्रमण संस्कृति के महान साधक महान तपस्वी, ज्ञानमूर्ति, चारित्र विभूषण, बाल ब्रह्मचारी परम पूज्य आचार्य श्री १०८ श्री ज्ञानसागर जी महाराज के पुनीत चरणों में तथा उनके परम सुयोग्यतम शिष्य चारित्र चक्रवर्ती पूज्य आचार्य श्री १०८ श्री विद्यासागर जी महाराज और इसी कड़ी में पूज्य मुनि श्री १०८ श्री सुधासागर जी महाराज, क्षुल्लकगण श्री गम्भीर सागर जी एवं श्री धैर्य सागरजी महाराज के पुनीत चरणों में नत मस्तक होता हुआ शत्-शत् वंदन, शत्-शत् अभिनंदन करता हुआ अपनी विनीत विनयांजली समर्पित करता हूँ ।

इन उपरोक्त भावनाओं के साथ प्राणी मात्र के लिए तत्वगवेषणा हेतु यह ग्रन्थ समाज के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं । यह **गुण सुन्दर वृतान्त** के ऊपर श्री क्षु. ज्ञानभूषण जी महाराज ने लिखी थी, यही क्षु. बाद में आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के नाम से जगत विख्यात हुए ।

इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण वीर निर्माण संवत् २४८४ में श्री दिगम्बर जैन पंचायती मन्दिर, हिसार से प्रकाशित हुआ था। उसी प्रकाशन को पुनः यथावत प्रकाशित करके इस ग्रन्थ की आपूर्ती की पूर्ती की जा रही है। अतः पूर्व प्रकाशक का दिगम्बर जैन समाज अजमेर आभार व्यक्त करती है। एवं इस द्वितीय संस्करण में दातारों का एवं प्रत्यक्ष एवं परोक्ष से जिन महानुभोवों ने सहयोग दिया है, उनका भी आभार मानते हैं।

इस ग्रन्थ की महिमा प्रथम संस्करण से प्रकाशकीय एवं प्रस्तावना में अतिरिक्त है। जो इस प्रकाशन में भी यथावत संलग्न हैं।

दिनाङ्क : 13-14-15 अक्टूबर 1994
वीरोदय महाकाव्य पर अ. भा. विद्वत संगोष्ठी

विनीत
श्री दिगम्बर जैन समिति
एवं सकल दिगम्बर जैन समाज
अजमेर (राज)

परम पूज्य
आचार्य 108 श्री ज्ञानसागरजी महाराज
सांख्यिकी – परिचय

प्रस्तुति - **कमल कुमार जैन**

पारिवारिक परिचय :

जन्म स्थान - राणोली ग्राम (जिला सीकर) राजस्थान
जन्म काल - सन् १८९१
पिता का नाम - श्री चतुर्भुज जी;
माता का नाम - श्रीमती घृतवरी देवी
गोत्र - छाबड़ा (खंडेलवाल जैन)
बाल्यकाल का नाम - भूरामल जी
भ्रात परिचय - पाँच भाई (छगनलाल/भूरामल/गंगाप्रसाद/गौरीलाल/एवं देवीदत्त)
पिता की मृत्यु - सन १९०२ में
शिक्षा - प्रारम्भिक शिक्षा गांव के विद्यालय में एवं शास्त्रि स्तर की शिक्षा स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस (उ. प्र.) से प्राप्त की ।

साहित्यिक परिचय :

संस्कृत भाषा में

* दयोदय / जयोदय / वीरोदय / (महाकाव्य)
* सुदर्शनयोदय / भद्रोदय / मुनि मनोरंजनाशीति - (चरित्र काव्य)
* सम्यकत्व सार शतक (जैन सिद्धान्त)
* प्रवचन सार प्रतिरुपक (धर्म शास्त्र)

हिन्दी भाषा में

* ऋषभावतार / भाग्योदय / विवेकोदय / गुण सुन्दर वृत्तान्त (चरित्र काव्य)
* कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन / सचित्तविवेचन / तत्वार्थसूत्र टीका / मानव धर्म (धर्मशास्त्र)
* देवागम स्तोत्र / नियमसार / अष्टपाहुड (पद्यानुवाद)
* स्वामी कुन्दकुन्द और सनातन जैन धर्म और जैन विवाह विधि

चारित्र पथ परिचय :

* सन १९४७ (वि. सं. २००४) में व्रतरुप से ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की ।
* सन १९५५ (वि. सं. २०१२) में क्षुल्लक दीक्षा धारण की ।
* सन १९५७ (वि. सं. २०१४) में ऐलक दीक्षा धारण की ।
* सन १९५९ (वि. सं. २०१६) में आचार्य १०८ श्री शिवसागर महाराज से उनके प्रथम शिष्य के रुप में मुनि दीक्षा धारण की। स्थान खानिया (जयपुर) राज । आपका नाम मुनि ज्ञानसागर रखा गया ।
* ३० जून सन् १९६८ (आषाड़ शुक्ला ५ सं. २०२५) को ब्रह्मचारी विद्याधर जी को मुनि पद की दीक्षा दी जो वर्तमान में आचार्य श्रेष्ठ विद्यासागर जो कि रुप में विराजित है ।
* ७ फरवरी सन् १९६९ (फागुन वदी ५ सं. २०२५) को नसीराबाद (राजस्थान) में जैन समाज ने आपको आचार्य पद से अलंकृत किया एवं इस तिथि को विवेकसागर जी को मुनिपद की दीक्षा दी ।
* संवत् २०२६ को ब्रह्मचारी जमनालाल श्री गंगवाल खाचरियावास (जिला-सीकर) रा. को क्षुल्लक दीक्षा दी और क्षुल्लक विनयसागर नाम रखा । बाद में क्षुल्लक विनयसागर जी ने मुनिश्री विवेकसागर जी से मुनि दीक्षा ली और मुनि विनयसागर कहलाये ।
* संवत् २०२६ महां ब्रह्म. पन्नालाल जी को केशरगंज अजमेर (राज.) में मुनि दीक्षा पूर्वक समाधि दी ।
* संवत् २०२६ में बनवारी लाल जी मुनि दीक्षा पूर्वक समाधि दी।
* २० अक्टूबर १९७२ को नसीराबाद में ब्रह्म. स्वरुपानन्दजी को क्षुल्लक दीक्षा दी, जो कि आचार्य श्री ज्ञानसागर जी के समाधिस्थ पश्चात् सन् १९७६ (कुण्डलपुर) तक आचार्य विद्यासागर महाराज के संघ में रहे ।
* २० अक्टूबर १९७२ को नसीराबाद जैन समाज ने आपको चारित्र चक्रवर्ती पद से अलंकृत किया ।
* क्षुल्लक आदिसागर जी, क्षुल्लक शीतलसागर जी (आचार्य महावीर कीर्ति जी के शिष्य भी आपके साथ रहते थे ।
* पांडित्य पूर्ण, जिन आगम के अतिश्रेष्ठ ज्ञाता आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज ने अपने जीवन काल में अनेकों श्रमण/आर्यिकाएँ/ऐलक/क्षुल्लक/ब्रह्मचारी/श्रावकों को जैन आगम के दर्शन का ज्ञान दिया।

आचार्य श्री वीर सागर जी/आचार्य श्री शिवसागर जी/आचार्य श्री धर्मसागर जी/आचार्य श्री अजित सागर जी / एवं वर्तमान श्रेष्ठ आचार्य विद्यासागर जी इसके अनुपम उदाहरण है ।

आचार्य श्री के चातुर्मास परिचय :

* संवत् २०१६ - अजमेर सं. २०१७ - लाडनू; सं. २०१८ - सीकर (तीनों चातुर्मास आचार्य शिवसागर जी के साथ किये)
* संवत २०१९ - सीकर; २०२० - हिंगोनिया (फुलेरा); सं. २०२१- मदनगंज - किशनगढ़ सं. २०२२ - अजमेर; सं. २०२३ - अजमेर, सं. २०२४ - मदनगंज-किशनगढ़ सं. २०२५ - अजमेर (सोनी जी की नसियाँ); सं. २०२६ - अजमेर (केसरगंज); सं. २०२७- किशनगढ़ रैनवाल; सं. २०२८ - मदनगंज-किशनगढ़ सं. २०२९- नसीराबाद।

विहार स्थल परिचय :

* सं. २०१२ से सं. २०१६ तक क्षुल्लक/ ऐलक अवस्था में - रोहतक/हासी/हिसार/गुउगाँवा/रिवाड़ी/एवं जयपुर ।
* सं. २०१६ से सं. २०२९ तक मुनि/आचार्य अवस्था में - अजमेर/ लाडनू/सीकर/हिंगोनिया/फुलेरा/मदनगंज- किशनगढ़/नसीराबाद/बीर/ रुपनगढ़/मरवा/छोटा नरेना/साली/साकून/हरसोली/छप्या/दूदू/मोजमाबाद/ चोरु/झाग/सांवरदा/खंडेला/हयोढ़ी/कोठी/मंडा-भीमसींह/भींडा/ किशनगढ़-रैनवाल/कांस/श्यामगढ़/मारोठ/सुरेरा/दांता/कुली/ खाचरियाबाद एवं नसीराबाद ।

अंतिम परिचय

* आचार्य पद त्याग एवं संल्लेखना व्रत ग्रहण :
  मंगसर वदी २ सं. २०२९ (२२ नवम्बर सन् १९७२)
* समाधिस्थ :
  ज्येष्ठ कृष्ण अमावस्या सं. २०३० (शुक्रवार १ जून सन् १९७३)
* समाधिस्थ समय: पूर्वान्ह १० बजकर ५० मिनिट ।
* सल्लेखना अवधि : मास १३ दिन (मिति अनुसार)
  ६ मास १० दिन (दिनांक अनुसार)

दर्शन-ज्ञान-चारित्र के अतिश्रेष्ठ अनुयायी के चरणों में श्रद्धेव नमन्। शत् शत् नमन ।

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

गुण सुन्दर वृत्तान्त

-: (०) :-

संसृति में मानव तनु पाकर भी व्यसनी रोगी ।
दीख रहे हैं जिनका जीवन ताकि अनुपयोगी ॥
कुछ ऐसे भी हैं जिनकी होती है गुण गाथा ।
देवों द्वारा, उनके चरणों में धर कर माथा ॥ १ ॥

उन में से ही यहाँ एक गुण सुन्दर की झांकी ।
करने को इस मेरी मति ने भी है ममता की ॥
उसकी सहयोगिनी लेखिनी बनने को आई ।
प्रायश्चित्त रूप में जिसने देखो पुतवाई ॥ २ ॥

जिह्वा द्वय धारक अपने मुँह पर सहस स्याही ।
अपने आप यहाँ अब ताकि न रहे उबट राही ॥
लेखानुसार चल्नने का ही इसका विचार है ।
सज्जन लोगों को भी इसकी सस्कृति याद रहे ॥ ३ ॥

जो कि नियम से होते हैं सन्तन सुगुण-ग्राही ।
जिनके मन में कभी नहीं होता मात्सर्याहि ॥
होती है उदारता रूप सुधा की ध्रुव धारा ।
जिसके बल पर जीता रहे सदैव जगत सारा ॥ ४ ॥

खल भी क्यों है बुरा जिसे पा करके ही तो गो ।
बने दुधारू इस भूतल पर सुनो सुघड़ लोगों ॥
इसी लिये मध्यस्थ भाव को कवि अपनाते हैं ।
तत्परता से कर अपना वे कार्य बताते हैं ॥ ५ ॥

सत्पथ-दर्शक वर्द्धमान रवि कवि-मन मोहक हैं ।
जिनके पाद प्रसाद में खुश भव्य सरोज रहें ॥
उसी समय में हो गयायहाँ एक नराधिप भी ।
सबके मन को हरने वाली थी जिसकी सुरभि ॥ ६ ॥

स्पष्ट नाम यों बिम्वसार था हुवा मधुर जिसका ।
जिसकी स्मृति आने पर भूरा चुप बैठे किसका ॥
दोषाकर था क्या वह देखो राजा होकर भी ।
था अहीन पर छिद्रान्वेषक भी क्या हुआ कभी ॥ ७ ॥

प्राणिमात्र पर दयालुताधर होकर धीवर था ।
दाक्षिण्योपयोग वाला होकर भी श्री-धर था ॥
इत्यादिक थी जिसमें देखी गई विलक्षणता ।
थी प्रख्यात भूमि पर जिसकी स्वयं सुलक्षणता ॥ ८ ॥

उसकी कीर्ति जो कि दर दर पर भटका करती थी ।
सती समझ कर उसने उसमें अभिरुचि बरती थी ।।
जो बेचारी परत्र जाने में भी डरती थी ।
उस लक्ष्मी को असती कह कर उसमें न रती थी ।। ९ ।।

तिरशठ ऐसा तत्वार्थो का गुण पाया जिसने ।
समाराधनावो का धन ही जहाँ सुयान बने ।।
त्रिवर्ग फल सम्पादक होकर भी जो एक रहा ।
भववारिधि को ऋषियों के मुँह से था सुना महा ।। १० ।।

एक रोज एकाकी राजा घूमने गया था ।
यतः प्रकृति के अवलोकन को उत्साह नया था ।।
दिल में क्यों कि कहाँ क्या कैसा होने पाया है ।
नहीं किसी गरीब परतो कुछ संकट आया है ।। ११ ।।

चलते चलते चला गया वह एक बगीचे में ।
सुराराम का नाम भी यहीं जिससे नीचे में ।।
नहीं घाम का नाम जहाँ तरुवों की छाया थी ।
पल्लव पुष्प फ़लों की जिन पर उघड़ी माया थी ।। १२ ।।

जिन पर तोता मैना जैसे पक्षी थे आये ।
मानों भाग्यवान के घर पर अतिथि पहुँच पाये ।।
जहाँ आम के मोर जोर से सुगन्ध देते थे ।
कोयल की कूक–द्वारा जो मन हर लेते थे ।। १३ ।।

कहीं दाडिमी अमरूद कहीं नारङ्गी केला ।
पनस सुपारी नारिकेल सहतूत निम्बु एला ॥
कमरख जम्बू मोसमी सीताफल चकोतरा ।
बीज़पूर गून्दी लीचू से थी परिपूर्ण धरा ॥ १४ ॥

राजादन जम्वीर लिसोड़ा आलुबुखारा वा ।
कैथ विल्व फालसा करोन्दा खजूर का दावा ॥
कही नाशपाती खिरणी तो कहीं खड़ी झाड़ी ।
कहीं कहीं पर दीख रही थी जिसमें फुलवाड़ी ॥ १५ ॥

चम्पा जुही चमेली मरुवा गुलाब का पोदा ।
मधुर मोगरा केवड़ा जहाँ परिमल का सोदा ॥
लता–कुञ्ज थे कहीं जहाँ पर शीतल छाया थी ।
मन्द सुगन्ध पवन था जिसका बना हुवा साथी ॥ १६ ॥

राजा ने जब उस उपवन पर दृष्टि एक डाली ।
इधर–उधर को सभी तरफ में उत्सुकता वाली ॥
किसी एक तरुवर तल से था प्रकाश सा आया ।
राजा ने सोचा कि वहाँ क्या कैसी कुछ माया ॥ १७ ॥

उसी ओर जब बढ़ा कि देखा एक देहधर था ।
आगे और गया कुछ तो वह समता का घर था ॥
जिसे देख साश्चर्य हर्ष का दिलमें बेग बढ़ा ।
मानो शशि–सम्पर्क से जलधिका ही नीर चढ़ा ॥ १८ ॥

शोचा देखो भाग्य से मिली मुनि जी की झांकी ।
मेरे मन मेंउठी तर्कणा जिसे देख बांकी ।।
आकृति अनुपम है कृति है यह सुकृत विधाता की ।
सावधानता उसने इसकी रचना में ताकी ।। १९ ।।

जहाँ इकट्ठी हुई सृष्टि की सुन्दरता सारी ।
मुख मण्डल शशि कुण्डल जैसा आह्लादक भारी ।।
झट आकर्षण होता मानव–मानस–चकोर का ।
जिसकी ओर और यह कैसा भाल है जोर का ।। २० ।।

मात किये देता है आठें के चन्दा को ही ।
तथा कण्ठ भी देखो कैसा है कम्बु–द्रोही ।।
कपोल दोनों गोल तथा मृदु और गुलाबी हैं ।
मानों ये स्वादिष्ट सुधारस भरी रकाबी हैं ।। २१ ।।

आँखें विशाल और नुकीली हैं कानों तक आई ।
जिन्हें देखकर पद्मिनियाँ है कैसी शरमाई ।।
स्वर्ण पट्टसा वक्षस्थल भी है विस्तीर्ण बड़ा ।
सुष्मा के पट्टा भिषेक के लिये कि गया घड़ा ।। २२ ।।

भुजा अर्गला सी सुगोल दृढ़ लम्बी खूब बनी ।
घुटनों तक जो पहुँच रही हैं सत्कृत की अवनी ।।
भव्य मूर्ति सुस्फूर्ति शान्ति फिर कान्ति यहाँ देखो ।
जिसे देखकर दृष्टि मनुज की विषाद को देखो ।। २३ ।।

इन सुलक्षणों से तो कोई यह बड़भागी हो ।
दासी दासादि सहित भोगों का अनुरागी हो ।।
किन्तु न इसके पास जरा भोगोपयोंगिता है ।
इसी दशा में जन्म हुवा क्यों जोकि दीखता है ।। २४ ।।

प्रायः दीन दशा को पाकर दिल है रोते हैं ।
साधुपनां अपना कर अपना संकट खोते हैं ।।
यद्यपि तज कर भोग योग लेना सत्तमता है ।
किन्तु बुढ़ापे में ही इसको राज मार्ग चाहे ।। २५ ।।

अधिक लोग तो बूढ़े होकर भी न गेह छोड़ें ।
मरण समय तक भी भोगों से जरा न मुँह मोड़ें ।।
फिर छोड़ा क्यों इसने घर को भरी जवानी में ।
असमञ्जस में बड़ा हुवा हूँ दशाऽनुमानी मैं ।। २६ ।।

किससे पूछूं और न कोई भी है दीख रहा ।
जो इससे हो परिचित उसको जावे वृत्त कहा ।।
तो क्यों फिर न पूछलूं इससे ही इसकी बीती ।
क्या है हानि बतावे यह ही स्वीय पूर्व रीती ।। २७ ।।

किन्तु समाधि निरत है यह तो यों विचार आया ।
इतने मे ही योगिराज कायोग पूर्ण पाया ।
तब फिर नतमस्तक हो ऐसे भोगिराज बोला ।
मानों चन्द्र विम्ब सम्मुख कैरव ने मुँह खोला ।। २८ ।।

हूँ जिज्ञासु यहाँ पर हे श्री योगि–महाशय मैं ।
क्यों घर छोड़ा आपने अहो इस नूतन–वय में ॥
क्या कोई तकरार हो गया था घर वालो से ।
या टोटा कार में पड़ा दुर्विधि की चालों से ॥ २९ ॥

किंवा किसी तरह का अनुचित था अपमान हुवा ।
खुद पाया क्या आपके लिये संकट विकट कुवां ॥
मुनि बोले हे भूप न कोई इनमें कारण था ।
केवल एक अनाथपने ने मेरा चित्त मथा ॥ ३० ॥

आश्रय दाता आपको नहीं कोई क्या पाया ।
यह तो मेरे विचार को हे मुने नहीं भाया ॥
आप सरीखे भाग्य भवन को नहीं सहारा था ।
यह तो सुनकर मेरा भगवन् ठनक रहा माथा ॥ ३१ ॥

क्यों कि आपकी आकृति से होता प्रतीत ऐसा ।
जिसके पास जाइये वह ही रखे फूल जैसा ॥
मैं कैसे मानूं कि आपके लिये हुवा ऐसा ।
जो न रत्न को अपनावे वह भी हो नर कैसा ॥ ३२ ॥

अस्तु हुवा सो हुवा नाथ अब भी पा सकते हैं ।
पा जावे तो आप उसे क्या अपना सकते हैं ॥
मुनि बोले कि न क्यों अपनाऊँ बलि बलि मैं जाऊँ ।
अहो जन्म इस मेरे को मैं सफल समझ पाऊँ ॥ ३३ ॥

तो फिर चले साथ मेरी मैं अब हूं ले चलता ।
सत्य इसे समझें इसमें है नहीं जरा खलता ।।
साथ रखूँगा मैं मेरी तुमको सदैव ऐसे ।
रखता है सुगन्ध को अपने में कि फूल जैसे ।। ३४ ।।

चटपट हो जावेगा मन चाहा प्रबन्ध सारा ।
जैसे दिन होते ही हो जाता है उजियारा ।।
जिसके द्वारा दुःख आपके मन में आवेगा ।
नभः कुसुम सम उसे ठिकाना कहीं न पावेगा ।। ३५ ।।

ऐसा होगा महल न जिसमें सरदी या गर्मी ।
मन्द सुगन्ध पवन आती ही रहे कुशल मर्मी ।।
नौकर चाकर सभी तरह के यथा स्थान देही ।
टहल चाकरी करने वाले खड़े रहेंगे ही ।। ३६ ।।

आप हमारे स्नेही हैं यहसमझ लीजियेगा ।
राजा बोला चलने का प्रति वचन दीजियेगा ।।
महाराज सरताज देर अब नहीं कीजियेगा ।
गेही बन भोगा—नुयोग का सुरस पीजियेगा ।। ३७ ।।

मुनि बोले फिर सोचलो जरा सावधानता से ।
ले चलने तो तुमने हे भूपालवर यहाँ से ।।
खुद भी ऐसे हो कि नहीं, मुझको जो वचन कहे ।
मुझको तो तुम भी तो अनाथ ही हो दीख रहे ।। ३८ ।।

मेरे लिये यहाँ क्या देखी बात शोचने की ।
मुझे अनाथ बता करतो दृढ़ भूल आपने की ॥
मेरी है वह शक्ति–न मैं कुछ भी तो सकुचाऊँ ।
किन्तु बात की बात में उसे पूरी कर पाऊँ ॥ ३९ ॥

जो कुछ भी आवश्यकता जिस समय आप की हो ।
तथा शत्रु से अगर आपने कहीं मात ली हो ॥
तो उस को भी मार भगाऊँ ताकत है मेरी ।
यथा हवा से तूल उड़े वह लगे नहीं देरी ॥ ४० ॥

यों घमण्ड में आकर बोला जहाँ नरेश्वर था ।
मुनि बोले कि न आगे बढ़िये हे भूपाल वृथा ॥
मेरे रिपु से मुझे बचा लेना तो दूर रहा ।
स्वयं शत्रु से आप बच रहो यह भी सुकर न हा ॥ ४१ ॥

इसी लिये मैं तुमको भी फिर अनाथ कहता हूँ ।
इस बारे में भूप कहाँ मैं चुप हो रहता हूँ ॥
तब राजा ने उसी बात को यों पुनरुक्त किया ।
मेरे कहने पर न आपने कुछ भी ध्यान दिया ॥ ४२ ॥

मेरी जैसी शक्ति और वैभव सेना दल है ।
पता नहीं आप को अतः यों कहने का बल है ॥
वरना तो शाबास आपके मुँहसे ही पाऊँ ।
अतः उसी का थोड़ा वर्णन कर मैं बतलाऊँ ॥ ४६ ॥

गज तेतीस हजार और रथ भी हैं उतने ही ।
घोड़े मेरे जोकि चाल में हैं पवन–स्नेही ॥
सैनिक हैं तेतीस कोटि जो हट्टे कट्टे हैं ।
जिन सब के विश्वास योग्य हाथों के गट्टे हैं ॥ ४४ ॥

फिर मेरे वह कोष होस से सुनिये आप जरा ।
जिसे देख लोगों ने वित्ताधिप को भी विसरा ॥
इच्छा के अनुसार वस्तुयें जहाँ कि हैं मिलती ।
जिसे देख दर्शक के दिल की कली–कली खिलती ॥ ४५ ॥

भोग और उपभोग योग्य साधन बहुतेरे हैं ।
मेरे यहाँ भाग्य ने स्वयं लगाये डेरे हैं ॥
अतः जहाँ कि अलभ्य न कोई जीच भव्यवर हो ।
आप सरीखे कई–कई दिन चाहे क्यों न रहो ॥ ४६ ॥

किञ्च जहाँ मैं हूँ फिर तुमको कोई क्या डर है ।
मेरे आगे आकर कोई भी क्या बात कहे ॥
और कौन सी बात बोलिये अब है शेष रही ।
ताकि आपके मन का मुनिवर खट्टा रहे दही ॥ ४७ ॥

फिर भी मुझको आप सरीखा आप कह रहे हैं ।
भोलापन है आपका जहाँ आप बह रहे हैं ॥
तब मुनि बोले भूप सुनी तेरी मैंने बातें ।
जान रहा हूँ जैसी तेरी कटती हैं रातें ॥ ४८ ॥

किन्तु न तुम तो अनाथ का भी अर्थ जानते हो ।
इसी लिये अपने मुँह से ऐसा बखानते हो ॥
धन सम्पत्ति कुटम्ब सहित होना न नाथता है ।
यह किन्तुमति महाराणी की मोह साथता है ॥ ४९ ॥

तो बताइये इसका सच्चा अर्थ कौनसा है ।
मेरा मन यह सुनने को साश्चर्य चकितसा है ॥
कहता हूँ यदि सावधानता से तुम भूप सुनो ।
सुनकर अपनी भूल हुई पर माथा आप धुनो ॥ ५० ॥

नहीं मुने ? विक्षेप मुझे मैं धैर्ययुक्त मन हूँ ॥
क्या आजीवन करना मुझको एक सधन जन हूं ॥
भिक्षा के भी लिये आपको जाना मुझे नहीं ।
आ सकता है मेरा भोजन मेरे लिये यहीं ॥ ५१ ॥

दोहा – मुनि बोले यह ठीक है तो तुम भोजनराज ।
प्रणमन किन्तु यहाँ सही करें न भोजन आज ॥ ५२ ॥

बैठे यों सन्देह जल–निधि के उस इस पार ।
एक न धन को चाहता अन्य सधन सरदार ॥ ५३ ॥

क्षण भर चुप रह कर नृपति बोला हे सरकार ।
तो फिर कहते क्यों नहीं क्या है तत्व विचार ॥ ५४ ॥

❀ ❀ ❀

卐 गुण सुन्दर का आत्म परिचय 卐

श्री मुनिय बोले प्रथम मेरी आत्म गाथा ही कहूं ।
मतलब सहज हो हल यतः मैं किन्तु अभिमानी नहूँ ॥
अपने चरित को आपके मुँह से न कहना उचित है ।
फिर बिना इस पथके इतर पथ यहाँ क्या समुचित रहे ॥ १ ॥

कोशाम्बिका नगरी हमारी जन्म–भूमि सुहावनी ।
धन कोश की जनपोष की जो सहज अम्वा थी बनी ॥
मेरे जनक का नम धन संचय यथोचित था यतः ॥
कर डालता जिस काम में बहु लाभ पाता था स्वतः ॥ २ ॥

माता तथा मेरी समश्री हुई जैसी नाम से ।
वह काम भी घर का सभी करती रही आराम से ॥
अभ्यागतों को दान फिर सम्मान भी देती रही ।
प्राघूर्णिकों को ताकि घर की कीर्ति हो जग में सही ॥ ३ ॥

मेरा पिता था वैश्चय उसका कोश किन्तु अथाह था ।
मुक्ता तथा माणिक्य आदिक का अमित अवगाह था ॥
शायद तुम्हारे कोश की भी नहीं ऐसी शान हो ।
जो देख पाता था उसे आश्चर्य वह होता अहो ॥ ४ ॥

पाया प्रसव उनके यहाँ मैंने शुभोदय दाम से ।
प्रख्याति मेरी हुई गुण सुन्दर सुभग इस नाम से ॥

पाला तथा पोषा गया मैं था बड़े ही चाव से ।
उप जननियों के हस्त कमलों में मधुप के भाव से ॥ ५ ॥

पढ़ लिख हुआ नादान तो मेरा विवाह हुवा प्रभो ।
उस नाजनी के साथ जिसके रूप की उपमा न भो ॥
पग चूमती जिसके उमा रति साथ जिसके घूमती ।
अभ्यङ्ग में तत्पर सदा जिसके कि लक्ष्मी थी सती ॥ ६ ॥

जिसका कि अनुचर काम था मुख शशी सुषुमा धाम था ।
मृदु देह जिसका बन रहा सौभाग्य का आराम था ॥
जो उच्च कुलकी बालिका उत्तम गुणों की मालिका ।
मेरे लिये वह बन रही थी देहली की पालिका ॥ ७ ॥

सुकुमार वय मेरी सरस ऐसी रईसी में कटी ।
जाना न मैने रात है अथवा सुबह की शुभ घटी ॥
न मुझे हुवा मालूम होता कष्ट कैसी चीज है ।
बीते दिवस सु विनोद में जैसेकि सावण तीज है ॥ ८ ॥

पाता रहा साधन सभी मेरे सदा अनुकूल मैं ।
भाई बहन आदिक कभी होते न थे प्रति कूल में ॥
मैं खुश रहूँ बर्ताव ऐसा ही किया करते सभी ।
मेरी शक्ल देखी विकल तो कल न पाते थे कभी ॥ ९ ॥

फिर युवस्था में युवक था एक मुझको मिल गया ।
सहसा उसी की ओर मेरा नरपते ? यह दिल गया ॥

जैसेकि दिनकर को निरखकर कमल ही हो खिलपड़ा ।
ऐसा हुवा वह हुवा ज्यों ही पास में आकर खड़ा ॥ १० ॥

उसने बताई साथ मेरे निष्प्रयोजन मित्रता ।
जिस के कि थी संलाप में पीयूष तुल्य पवित्रता ॥
सब तरह दोनों में यहाँ हो चली थी प्रतिचित्रतां ।
फिर भी बनी ही रही देखो एक किन्तु विचित्रता ॥ ११ ॥

था वह कहा करता कि यह संसार एक सराय है ।
भयभीत ही रहता सतत जिस में विकसंघृत काय है ॥
निःशङ्क होकर रहे ऐसी हाँ मेरी राय है ।
अपने परिश्रम से जहाँ पर घृत सिता की आय है ॥ १२ ॥

स्वार्थ प्रतिष्ठित हैं सभी कोई किसी का है नहीं ।
मैं हूँ तुम्हारा और मेरे तुम यहाँ हैं क्यों नहीं ॥
तु शोच कर देखो कि दुनियाँ सहज दुःखों से भरी ।
है क्या नहीं मिलती यहाँ पर भोग सामग्री खरी ॥ १३ ॥

जाता नहीं है साथ में यह गात भी इस जीव का ।
होता प्रयाण अमुत्र एकाकी स्वयं मतिपीब का ॥
फिर है कहाँ परलोक यह तनु पञ्चभूतात्मक नबी ।
है नाचती रहती जहाँ तक खून की हो शनशनी ॥ १४ ॥

इस तरह उसके और मेरे हुवा करती बात थी ।
वह कहा करता दिन जिसे मेरे लिये वह रात थी ॥

यों बार–बार विचार चलता था परस्पर में जहाँ ।
तब अन्त मे मैं यह कहा करता कि देखों तो यहाँ ॥ १५ ॥

माता पिता भाई बहन वनितादि जो मेरे सही ।
मुझ पर बताते प्रेम यह है दीखता प्रत्यक्ष ही ॥
मैं घड़ी भर भी जब न उनको दीख पाता हूँ कभी ।
हो विकल खाना और पीना भूल जाते हैं सभी ॥ १६ ॥

मेरे लिये वे प्राण भी दे डालना हैं चाहते ।
तुम भी नहीं क्या देखते हो कहो क्यों न महामते ? ॥
मैं और की तो कहूँ कैसे क्यों कि विश्व अदृष्ट है ।
मुझ बान्धवों में स्नेह सच्चा है यहाँ सुस्पष्ट है ॥ १७ ॥

फिर भी न वह तो मानताथा बोलता था क्या कहूँ ।
है स्वार्थ का संसार सारा हे सखे कहता–नहूँ ? ॥
ये सुर असुर नर नाग पशु पक्षी सगे है स्वार्थ के ।
मतलब सधा कि न बात पूछें यों विबुध कह कर थके ॥ १८ ॥

यों बात करते हम परस्पर में नृवर फिर आ गये ।
तालाब के तट पर जहां थे गाछ खूब नये नये ॥
फलफूल निज परथे लदे छाया सघन थी हो रही ।
अतएव पक्षी जो कि आता बैठ जाता था वहीं ॥ १९ ॥

तालाब भी था सजल जिसमें कमल दल थे खिल रहे ।
ठण्डी हवा के सरसझोंके से तथोचित हिल रहे ॥

अतएव जोकि पराग रस को थे निरन्तर पूञ्जते ।
जिन पर सुगन्ध विलुब्ध मधुकर मत्त होकर गूञ्जते ॥ २० ॥

जल में मछलियाँ इधर आकर थी उधर को जा रही ।
आनन्द से शेवाल दलको तोड़ तक थी खा रही ॥
कल हंस वंश बटेर बत्तक कोक आदिक भी जहाँ ।
वर केलि करते घूमते फिरते यहाँ से थे वहाँ ॥ २१ ॥

आता पथिक वर वीर पीकर नीर ठंडी छाह में ।
वह वृक्षके फलफूल खाता दीख पाया था हमें ॥
हम भी वहाँ कुछ देर तक आराम पाने के लिये ।
बैठे तथा उठकर वहाँ से और आगे चल दिये ॥ २२ ॥

घूमे फिर चक्कर लगाया किञ्च जब वापिस हुवे ।
आये उसी तालाब पर तो भाव मन के थे मुवे ॥
हाँ क्योंकि अबकी बार कुछ भी सार उसमें था नहीं ।
केवल बची दुर्गन्धिमय कीचड़ नरेश ? कहीं कहीं ॥ २३ ॥

सब पेड़ भी थे सूख कर खंखर वहाँ के हो चले ।
फल फूल तो कुछ थे नहीं कुछ किन्तु पत्ते थे जले ॥
आकर जरा ठहरे कि मैंने मित्र से यों था कहा ।
जलदी चलो भैया यतः दुर्गन्ध आती है यहाँ ॥ २४ ॥

फिर तो कहा यों मित्र ने कि यही यहाँ अधिकार है ।
मैं ठीक ही हूँ कहरहा कि स्वार्थ मय संसार है ॥

तालाब था सम्पत्ति युत तब सब जहाँ रुचि ले रहे ।
सुख भोगकर इसको शुभाशिर्वाद भी सबने कहे ॥ २५ ॥

अब जल नहीं तब कौन इसके पास में बैठे कहो ।
संकट भुगतने को कि उठकर चल दिये सब हैं अहो ॥
जब कमल थे तो गन्ध लेने को डटे थे अलि यहाँ ।
अब एक भी उनमें नहीं हैं क्योंकि कजकलि है कहाँ ॥ २६ ॥

इन तरुवरों पर जबकि फल थे बैठते थे विहग भी ।
आकर यहाँ आराम से विश्राम लेने को सभी ॥
उठ चल दिये वे अब जबकि निस्सारता आई यहाँ ।
निज-निज विचाराधीन देखो वे कुलीन जहाँ तहाँ ॥ २७ ॥

बस तो यही संसार में परिवार की भी बात है ।
स्वार्थानुसार जनी स्वसा जननी जनक या तात है ॥
सन्तुष्ट होती है प्रिया अतएव उसके नाथ हो ।
भाई कहे मेरी भुजा है ताकि देते साथ हो ॥ २८ ॥

मृदु चीर पाती पर्व में भगिनी बताती वीर है ।
कहता पिता तुमको, तनय वह क्योंकि आश्रम में रहे ॥
माता-पिता के लिये भी सुत तुम तभी तक समझलो ।
जब तक कि इस भूभाग पर हे मित्र कहने में चलो ॥ २९ ॥

इसके लिये कुछ काल पहले की सुनाता हूं कथा ।
विद्या धरों का समधिनायक काल सम्वर भूप था ॥

उसके प्रिया थी एक सुभगा किन्तु निस्सन्तान थी ।
सुत के बिना अपनी नहीं कुछ भी समझती शान थी ॥ ३० ॥

थे एक दिन वे दम्पती आकाश पथ से जा रहे ।
पथ बीच में स्वविमान को अटका हुवा जब पा रहे ॥
कैसे रुक रहा यान है यह कौन कारण है यहाँ ।
चिन्ता निमग्न हुये कुछ समय के लिये तो यों वहाँ ॥ ३१ ॥

हिलती हुई महती शिला को देख फिर भूपाल ने ।
जब थी उठाई तो वहाँ दर्शन दिये बरबाल ने ॥
खेचर हुवा खुश खूब मानों रङ्क को निधि मिल गई ।
रवि से कमल की भांति उसके चित्त की कलि खिल गई ॥ ३२॥

उस बालशशि को निरख उसका मोद वारिधि जो बढ़ा ।
हर्षा श्रुवों के नाम से फिर वही बाहिर में कढ़ा ॥
सम्प्राप्त उस आनन्द को सुविभक्त करने के लिये ।
अपनी प्रियाको भी वहाँ उसने समाश्वासन दिये ॥ ३३ ॥

मधुराननें सुन देख सुतलाभान्तराय अहो मुवा ।
मेरा तथा यह आज मेरा प्रेम–बन्धु उदय हुवा ॥
आ और ले यह भाग्यशाली पुत्र मिल पाया तुझे ।
ने हुई प्रसव की वेदना भी हर्ष इसका है मुझे ॥ ३४ ॥

क्यों व्यर्थ का तुम भी यहाँ पर हास्य करते हो प्रभो ।
जलते हुये मेरे कलेजे को जलाते हन्त भी ॥

मुझ सरीखी हतभागिनी के भाग्य में सुत है कहाँ ।
झट आइये मत देर करिये अब चले चलना जहाँ ॥ ३५ ॥

देखो प्रिये सदपत्य है न असत्य है इसमें जरा ।
दुर्दैव वह तेरा यहाँ पर आज तेरे से डरा ॥
आ पास में तो आशुभे ले उठा इसको क्यों नहीं ।
सुभगे समुत्तम कार्य में आलस्य तू क्यों कर रही ॥ ३६ ॥

फिर है अगर तो क्या करूँ क्यों लूं न मैं लेती इसे ।
इस तरह से संग्रह किया सम्प्रीतिकर यह हो किसे ॥
जब आप के परराणियों से पाँच सो शुभ पूत हैं ।
जो एक से भी एक बढ़कर सद्गुणों के दूत हैं ॥ ३७ ॥

क्या कह रही है शुभे ? मैं इसका न मान अहो करूँ ।
युवराज पद हूँ दे रहा यह ताज इसके सिर धरूँ ॥
यह है नहीं सामान्य, कोई महाभागी जीव है ।
जिसका कि देखो आज भी यह बल सुभाग अतीव है ॥ ३८ ॥

नृप का सदाग्रह देख रानी ने लिया था गोद में ।
उस बाल को फिर दम्पती दोनों चले भर मोद में ॥
निजदेश जा सन्देश ऐसा किया महदनुराग से ।
था गूढ़ गर्भ हुवा तनय पथ में सती के भाग से ॥ ३९ ॥

तब सब हुए हर्षित समाकर्षित नयन जिनके अहो ।
सुत सुधारक की ओर, बोले चिरंजीवी यह रहो ॥

बढ़ने लगा अब बाल कल्पांघ्रिपसदङ्कुर तुल्य था ।
होंने लगी आनन्द दायक नित नई घर पर कथा ॥ ४० ॥

उसने कि शैशव लांघकर कौमारपन पाया जहाँ ।
बलशालि रिपु की याद से नृप खिन्न हो आया वहाँ ॥
जिस शत्रु का परिहार करना वाम कर का काम था ।
उसके लिये तो यतः श्री प्रद्युम्न उसका नाम था ॥ ४१ ॥

उठ चला बान्धलिया अधम को पाश से ज्यों श्यालको ।
यह देख थी स्यावास दी नरनाथ ने उस बाल को ॥
सामान्त शूरोदार साहूकार नर मय हाल में ॥
बंधवादिया युवराज पट निर्वाध उसके भाल में ॥ ४२ ॥

यह देख माता और सबको भी हुई साता बड़ी ।
फिर मोसियों को और उनके बालकों को वह घड़ी ॥
विषवृष्टि जैसी दुःखदा अनुमान में आई वहाँ ।
आशालता उनके हृदय की थी रही अब वह कहाँ ॥ ४३ ॥

अब तो उन्हें वह दीख पाता था वहीं अघभार था ।
जो आज पहले वित्त की शुचि चेतना का सार था ॥
होने लगे उनकी तरफ से गुप्त उस पर वार थे ।
जो एक अच्छे वीर के भी लिए कष्ट करार थे ॥ ४४ ॥

वे सब हुए उसके लिए तो सम्पदोदय सार ही ।
हाँ सुकृतसत्ता चाहिये फिर विपत् हो कोई नहीं ॥

यों सकल वैभव युक्त शोभासूक्त यौवन पूर्ण था ।
माँ के समीप गया कि हो पाई विचित्र वहाँ कथा ॥ ४५ ॥

देखा सवित्री ने कि उसके जहाँ सुघड़ शरीर को ।
वह हुई विह्वल सह सकी क्या मार के मृदु तीर को ॥
बोली न छूवो चरण मेरे तुम न मेरे पूत हो ।
मेरे लिए तो आज से तुम बने रति के दूत हो ॥ ४६ ॥

कैसा अनोखा रूप जो श्रृङ्गार रस का कूप है ।
स्मर कल्प तरुवरके लिये यह बना देश अनूप है ।
हे कान्त मेरा मुख कहूँक्या वह श्री का प्रान्त है ।
जो दीखता विकसित सहज में मृदुस्मित मधुतान्त है ॥ ४७ ॥

ये घुंघरुवाले बाल रतिपति का बिछाया जाल हो ।
मेरे नयन पक्षी फंसे इसमें कहो क्या हाल हो ॥
तेरे कमल कोमल करो के योग्य तो छाती यहाँ ।
है जल रही हो जाय ठण्डी वह करो हे सद यहाँ ॥ ४८ ॥

वह नेक लब्धविवेक एकाएक इस अतिरेक से ।
था पड़ रहा कुछ शोच में कि अहो हुवा क्या है इसे ॥
हो रही बात विकास ही इसके हृदय पर है कहीं ।
इसलिये ही यह अंट संट विरुद्ध ऐसा बक रही ॥ ४९ ॥

अतएव बोला किञ्च हो लाचार सा मन में यही ।
हे अम्ब आवो होस में तुम किसे क्या हो कह रही ॥

मैं हूँ तनुज तेरा न मेरा समामन्त्रण यों करो ।
जिनराज हैं सरताज सबके ध्यान उनका ही धरो ॥ ५० ॥

मैं हूँ न विक्षिप्तादयित ? तुम ही यहाँ हो भूलते ।
वे जानकारी के हिंडोले मैं कि बैंठे झूलते ॥
तुम हो नहीं मेरे तनुज फिर मनुज एक जरूर हो ।
जो थे मिले कान्तार में अब आज नर होकर रहो ॥ ५१ ॥

छोड़ो पुरानी बात को आया करो तुम रात को ।
आवो मिलावो हात को आगा न कुछ पीछा तको ॥
जैसा कहूँ मैं वह करो कुछ भी यहाँ पर मत डरो ।
आनन्द की घड़ियाँ भरो तारुण्य तोयधि में तरो ॥ ५२ ॥

देखा जहाँ कि कुमार ने इसको दबाया मार ने ।
इस तरह से उस भूलती को वह लगा फटकारने ॥
हे जननि ? तेरा मन निरा दुष्कल्पनावों से घिरा ।
क्यों ताकि तू मुझ से अहो है कह रही ऐसी गिरा ॥ ५३ ॥

मैं हूँ तनय तेरा अतः विख्यातनय मेरा यहाँ ।
तेरी चरण रजको स्वमस्तक से लगाऊँ सतत हाँ ॥
आज्ञा बजाऊँ और सब तेरी न देरी मैं करूँ ।
फिर इस न होती बात से हे मात आत्मतया डरूँ ॥ ५४ ॥

तुम भी सँभालो चित्त को दो लात दुष्ट निमित्त को ।
निःसार इस कुविचार में खोवो न शील सुवित्त को ॥

दुष्कामना पूरी न तेरी यहाँ होवेगी कभी ।
हो जाय चाहे क्यों न दिनकर यह इधर से उधर भी ॥ ५५ ॥

तुम मान जावो कान्त मेरे यहाँ आवो क्यों नहीं ।
गुद–गुदी करके बतावो एक बार अहो सही ॥
यह विनति छोटी सी न मेरी हन्त यदि तुमने सुणी ।
फिर तो कुशलता कहाँ मेरी और तेरी भी गुणिन् ॥ ५६ ॥

यह टेव खोटी है तुम्हारी इसे भूलो सर्वथा ।
जिनराज के शुभ नाम की निज जीभ पर लावोकथा ॥
इस एक ही अभिराम पथ में विश्वभर की कुशलता ।
अन्यथा तो इस अधम जीवन में जननि ? है विकलता ॥ ५७ ॥

दोहा – यों दोनों थे डट रहे राणी और कुमार ।
अपने–अपने लक्ष्य पर किये हुए अधिकार ॥ ५८ ॥

मदमाती राणी जहाँ करिणी जैसी ठीक ।
हरिसुत वह था धैर्ययुत इसमें नहीं अलीक ॥ ५९ ॥

जनी नागिनी की तरह करती थी फुङ्कार ।
किन्तु गरुण की भांति वह देता जहर उतार ॥ ६० ॥

नहीं सफलता का कोई भी देखा जब था चारा ।
तब राणी के मन में आई ऐसी विचार धारा ॥
हन्त शर्म, धन, धर्म गमाया जरा न सुख भी पाया ।
घी गुड़ आटा भी बिगड़ा फिर हलवा हाथ न आया ॥ ६१

अब मैं इसके आगे किसको कैसे मुँह दिखलाऊँ ।
जहाँ यह वहाँ मैं न कभी भी ऊँचा शिर कर पाऊँ ॥
कोई भी प्रपञ्च रचकर मैं अब इसको मरवाऊँ ।
अबला के विरूद्ध अडने का इसको मजा चखाऊँ ॥ ६२ ॥

कुण्डलियाँ – अपने कर से आपका नोच लिया सब अङ्ग ।
मर्दित वल्ली तुल्य था कर पाया सब ढङ्ग ॥
करपाया सब ढङ्ग भूप को ठग लेने का ।
सत्य बात के बारे में धोका देने का ॥
बोली देखो जिसे आप लाये आदर से ।
उस सुत ने मेरा तनु नोचा अपने कर से ॥ ६३ ॥

छप्पय – राजा को आ गया रोष तो पिता पुत्र में ।
छिड़ा युद्ध जो लिखा हुवा था दैव सूत्र में ॥
जहाँ उधर सामन्त शूर आदिक सब ही थे ।
किन्तु इधर शोढषवर्षी श्री कुमार जी थे ॥
फिर भी इस भूभाग पर विजय सत्य की ही रही ।
हार गये सब शूर थे श्री कुमार हारे नहीं ॥ ६४ ॥

इस पर से शिक्षा हमको मिलती है सुख दाई ।
स्वार्थ पूर्ण संसार पिता क्या, क्या माता, क्या भाई ॥
जब तक उनकी अभिरुचि के अनुसार करो चतुराई ।
तब तक होवें अपने वरना करने लगें बुराई ॥

अतः विज्ञको चाहिये स्नेह सभी के साथ में ।
रखे, कमी आने न दे फिर निज हित की बात में ॥ ६५ ॥

❀ ❀ ❀

卐 परिवार सब स्वार्थ का है 卐

श्री जिन कहते हैं कि मोहवश यह अज्ञानी जीव अहा ।
होता और बिना होता भी करने में न तु हिचक रहा ॥
अपने भाई बन्धुजनों की आशा पूरी करने को ।
क्या वे साथ रहेंगे इसकी दुःख नरक में भरने को ॥ १ ॥

पापाचरण किया करता है जन नाना धन पाने को ।
परिजन में रहकर वह उनको अपने साथ लगाने को ॥
खाने भरके लिये वे सभी किन्तु न कष्ट बटाने को ।
खड़े कुछ रहें, सहे अकेला पातक के परवाने को ॥ २ ॥

श्रम जीवी था एक सुनों जो श्रम कर पेट पालता था ।
जो कर्त्तव्य समझकर भरसक परिकर को संभालताथा ॥
एक रोज चावल वाले से श्रम कर चावल लाया था ।
लाकर उनको निजवनिता से ठीक तरह पकवाया था ॥ ३ ॥

पकजाने पर वनिता बोली अहो आज चावल पाये ।
किन्तु बिना मीठे के ये सब कैसे जावेंगे खाये ॥

अतः जरा अब मीठा लावो भात हुये तैय्यार अहो ।
जावो तुम देर लगावो क्यों अब ऐसे खड़े रहो ॥ ४ ॥

गया किन्तु मीठा इसको अब कौन कहाँ कुछ दे कैसे ।
एकाएक कहो, डूब रहा असमञ्जस मैं था ऐसे ॥
आगे बढ़ देखा गुडवाला अपनी हाट सजाने की ।
वहाँ एक भेली रख भीतर गया दसरी लाने को ॥ ५ ॥

यह ले भगा उसे लाकर दी निज औरत के हाथों में ।
उसने जिसको चूरमूर कर शीघ्र गिराई भातों में ॥
इधर हाट वाले ने आकर देखा पीछे लग पाया ।
वोला रे हरामजादातूँ गुण मेरा क्यो ले आया ॥ ६ ॥

औरत बोली हन्त आज यह चोरी कर है क्या लाया ।
की वदनामी मेरे घर की भजन किया सब खो पाया ॥
हे भगवन् यह कौन चानक ही देखो सङ्कट आया ।
जा अपनी करणी के फल को पा, यों कहाँ पकड़ वाया ॥ ७ ॥

लात घमूकों से पहले तो वहाँ मरम्मत हुई बड़ी ।
पकड़ कोतवाली में लाया गया हतकडी यहाँ पड़ी ॥
मैंने क्यो यह किया ताकि देखो कैसा कष्ट उठाया ।
आगे को न करूँ ऐसा अब मैं यदि यहाँ छूट पाया ॥ ८ ॥

वार वार अपने मन में वह इसी तरह जब पछताया ।
मुक्त हुवा अंथउ तकतव फिर वापिस था घर पर आया ॥

घर वालों ने था भातों को सहसा इधर वांट खाया ।
उसका हिस्सा रख छोड़ जिसको विलावने गट काया ॥ ९ ॥

अतः उसे भूखा ही सोना पड़ा करे क्या वहाँ कहो ।
कौटम्बिक जीवन की झांकी यह है देखो विज्ञ अहो ॥
फिर भी इसमें फँसा हुवा यह पामर लूट मचाता है ।
नहीं दीन हीनों को ठगने में कुछ हिचकी खाता है ॥ १० ॥

इसमें भी लोगों का होता दो प्रकार का विचार हाँ ।
एक तो कि अपना कुटुम्बका हो पावे निर्वाह यहाँ ॥
सार्थ दण्ड यह कहलाता है होता है क्षन्तव्य कहीं ।
व्यावहारिकों की निगाह में होता है यह निन्द्य नहीं ॥ ११ ॥

क्योंकि सदा इसके मन में यों होती स्वयं अजडता है ।
अनुचित है यह किन्तु करुँ क्या पेट पालना पड़ता है ॥
पछतावे की सब पावक से कोमलता अनुसरता है ।
घोर पङ्क में कभी न इससे वह अपना पग धरता है ॥ १२ ॥

किन्तु यथोचित आजीवन के होने पर भी रोता है ।
धनी कहलाने की आशा के ही वश में होता है ॥
येन केनरुपेण मनोरथ भरने में ही तत्पर हो ।
रहता है वह इस भूतल पर पापों से डरता न अहो ॥ १३ ॥

मैं मेरे कौशल से उनको मालो माल बना जाऊँ ।
जोकि सहोदर हैं मेरे मैं इसमें कसर नहीं लाऊँ ॥

यों अन्धा होकर करता है धन्धा पाप प्राय सदा ।
शोच नलाता इस अनर्थ की कौन उठावेगा विपदा ॥ १४ ॥

ज्ञानी कहते हैं होता है स्वार्थ पूर्ण भाई चारा ।
जहाँ स्वार्थ में वट्टा आया हो जावे विरुद्ध सारा ॥
भरे पड़े हैं उदाहरण इसके दुनियाँ में हे साधो ।
कौरव पाण्डव झूझमरे इसको अपने दिल में साधो ॥ १५ ॥

ऋषभदेव के पुत्र जो हुये भरतराज या बाहुबली ।
लड़े राज्ये के लिये कहो क्या कोई की भी वहाँ चली ॥
रोज देखने को मिलता है एक को न यदि आय कही ।
और अधिक सन्तान ताकि खर्चे की चिन्ता सता रही ॥ १६ ॥

तो वह हो रहता है न्यारा जिसे आय है खर्च नहीं ।
अपनी तापा करता है वह जिसको विपदा सता रही ॥
स्वार्थ हानि में रूस रहें यह तो साधारण बात रही ।
स्वार्थ सिद्धि करते करते भी लड़ मरते हैं कहाँ नहीं ॥ १७ ॥

देख लो जरा तुम धन्ना के सम्प्रति सहोदरों को ही ।
वह करता है सदा भलाई वे हैं वने स्वयं द्रोही ॥
पार्श्वनाथ के पूर्व जन्म पर कभी गौरकर है देखा ।
भाई भाई में आपस में कैसा दुरन्तथा लेखा ॥ १८ ॥

तन मन धन से करता था मरु भूति बड़ाई भाई की ।
फिर भी कमठ दुष्ट जेठेने उस की घोर बुराई की ॥

सुनो आज मैं उनका ही तुमको आख्यान सुनाता हूँ ।
ताकि अचम्भे से तेरे शिर को अब यहाँ धुनाता हूँ ॥ १९ ॥

कमठ और मरुभूति एक माँ से दोनों हो पाये थे ।
विषपीयूष जलधिवेला से यथा तथा कहलाये थे ।
जिनका जनक रात्र मन्त्री था, थी अखण्ड शुभ भाग्य लड़ी ।
उसकी ताकि प्रजा जनों पर जमी हुई थी धाक बड़ी ॥ २० ॥

मेरा पिता सचिव इस मद से कमठ उपद्रव करता था ।
मृदु जनता में भूरि–भूरि वह नहीं पाप से डरता था ॥
विवश भाव से किन्तु हन्त वे लोग सभी कुछ सहते थे ।
मन्त्रि पुत्र है कहें किसे क्या मन मसोस यों रहते थे ॥ २१ ॥

हाँ मरुभूति सरल दिल था जो पथ जाता पथ आता था ।
कुशल क्षेम पूछ कर सबके मन को मुदित बनाता था ॥
क्रूर एक था किन्तु दूसरा सहज सौम्य जो भाता था ।
रवि शशि जैसा उन दोनों में भेद दीख यों पाता था ॥ २२ ॥

जब आता था ध्यान पिता का इस अन्तर पर तो वह भी ।
सखेद कहने लगता था शिक्षा के सुवचन कभी कभी ॥
देखो कमठ सुनो तुम बेटे अपनी इस कठोरता को ।
छोड़ो अपने छोटे भाई की ही ओर जरा ताको ॥ २३ ॥

कैसा यह है मिलनसार मृदुभाषी परसेवाभावी ।
कम से कम तुम भी ऐसे ही क्यों न बनो हे मेधाविन् ॥

तुम तो बल्कि बड़े हो तुम पर ही है बोझ भार सारा।
मेरे पीछे तुम से ही होने वाला है निस्तारा ॥ २४ ॥

इसजनता का किन्तु कहो क्या जनता तुम से राजी है।
देख रहा हूँ–तेरी आदत दूध धार में साजी है ॥
याद रहे मुक्ता फल का भी गुण ही से तो आदर है।
वरना गले लगावे कैसे कौन, बेग में धरा रहे ॥ २५ ॥

इस पर मरुभूति कहा करता नहीं पिता ऐसा न कहो।
मुझ से भी यह अच्छे हैं ज्यों देव दारु से चन्दन हो ॥
दुनियाँ का क्या वह तो चलती को भी गाड़ी कहती है।
खोया दूधसार को ऐसे उलटी भी वह बहती है ॥ २६ ॥

कमठ चित्त पङ्कज को कष्ट प्रद होती थी वह आशी।
सबके लिये शान्ति दाय होकर भी बादल वर्षा सी ॥
शोचा करता था कि दुष्ट मरुभूति नहीं यदि यह होता।
तो ये ताने सुनकर मेरा चित्त कहो क्यों फिर रोता ॥ २७ ॥

देखो मैं तो नमक यह यहाँ प्यारा गुड़ हो जैसा है।
पिता पुत्र का चित्त एक है इसी लिये तो ऐसा है ॥
हन्त एक दिन यह न रहेगा या मैं ही मर जाऊँगा।
तब ही होगा ठीक यहाँ पर वरना कष्ट उठाऊँगा ॥ २८ ॥

यों दिन दिन कमठाहि वक्रता को अपनाता जाता था।
गारुडपन मन्त्री का भी वह नहीं किन्तु थक पाता था ॥

अत: न उसके दंश की कहीं फैल सकी कुट माया थी ।
न्याय कल्पतरु की जनता पर महती ही वह छाया थी ॥ २९ ॥

अपनी अपनी वृत्ति को सभी सरल भाव से करते थे ।
अनधिकार बर्ताव में नहीं कहीं कदम भी धरते थे ॥
चोरी जारी जैसे दुष्कृत्यों से दूर गुजरते थे ।
मद्य मांस सेवन करने से सहज रूप में डरते थे ॥ ३९ ॥

नहीं कमाई पर की पर निर्वाह का विचार धरते थे ।
आय आपकी में से भी कुछ परार्थ हिस्सा करते थे ।
यों सन्तोष भाव में रहकर सुदिवस जिनके कटते थे ।
सरस नाम जिन जी का अपने मन में निश दिन रटते थे ॥ ३१ ॥

अन्त समय सन्यास धार वे स्वर्ग सम्पदा पाते थे ।
धर्म धारियों के प्रति मन में सत्य स्नेह बताते थे ॥
प्राणि मात्र पर जो समता का भाव स्फुट कर पाते थे ।
निस्सङ्गतया वे भव वन को सुनर पार कर जाते थे ॥ ३२ ॥

देखें तो कि यहाँ के नर भी स्वर्ग निवासी हो पाये ।
कौन अधिक सुख वहाँ यहाँ से जो उनको ऐसे भाये ॥
इस विचार से ही मानो मन्त्री भी स्वर्ग पहुँच पाये ।
एका एक विमानाधिप हो एक रोज जो कि न आये ॥ ३३ ॥

आम सभा बुलवा कर बोला भूप कि—शोभा नहीं यहाँ ।
बिना सचिव के पुष्पगुच्छ से शून्य बगीची नाम जहाँ ॥

एक स्वर से तब सब बोले यहाँ सचिव हों मरुभूति ।
जोकि विनय सौजन्यौदार्य विवेकादिकयुत सुविभूति ॥ ३४ ॥

हे सज्जन लोगों तुम सब ने आज सिता में घी घोला ।
उपर्युक्त बात के समर्थन में राजा था यों बोला ॥
किन्तु कहा मरुभूति ने कि हे विज्ञो तुम हो भूल रहे
मुझ बालक के लिये अहो ऐसे श्लाघा के वचन कहे ॥ ३५ ॥

मैं हूँ उसके योग्य नहीं जो आप दे रहे आदर हैं ।
इसके योग्य किन्तु हैं भ्राता कमठ जो कि आबाद रहे ॥
बोले लोग कि आप हमारे और आपके ये होवें ।
श्री जिनवर जी क्यों न इस तरह सङ्कट सबके ही खोवे ॥ ३६ ॥

जय मरुभूति मन्त्रिवर की होयों फिर था जय घोष हुवा ।
और सभी थे प्रसन्न केवल किन्तु कमठ को रोष हुवा ॥
मेरे लिये कि कैसा यह है खुदा जा रहा अन्धु कुवां ।
किन्तु विवश था क्या करे अतः उसके मन का मान सुवा ॥ ३७ ॥

एक रोज अन्यत्र कहीं था गया सचिवर कि कमठने ।
देख युवति उसकी को ऐसा मन में शोचा झट शठने ॥
कला काम की यह इस आगे रति भी सिर्फ नामकी है ।
मुझको तो यह दीख रही कीकिल कोसुकलि आम की है ॥ ३८ ॥

अगर इसे पाऊँ हो जाऊँ निहाल, कार्य बने दोही ।
मुझे मृतक को अमृत मिले, मरु मर पावे इस पर मोही ॥

किन्तु कार्य है कठिन करूँ क्या उपाय यह कैसे होवे ।
मेरे हाथ किस तरह आवे वह अपने घर में सोवे ॥ ३९ ॥

इतने में कलहंस नाम इसका दिलदार यहाँ आया ।
देखा इसे मलिन मुख तो बोला कि शोच है क्या छाया ॥
क्या बोलूं मैं हे कलहंसक मेरे मन को चुरा लिया ।
अनुन्धरी ने अतः मित्र मैं मरा भी न तो नहीं जिया ॥ ४० ॥

क्या कहते हो शोचो तो – वह तनुजा तुल्य अनुज जाया ।
शोच रहा हूँ विश्वसृष्टा की है यह सब माया ॥
तो क्या फिर उसको ले आऊँ लाना मेरे हाथ रहा ।
किन्तु सोचलो कमठ जरा यह काम अधम से अधम महा ॥ ४१ ॥

मेरा यदि आदेश कर सको करो न दो उपदेश यहाँ ।
भूखे को चाहिये भात फिर कहो धर्म सन्देश वहाँ ॥
हो लाचार गया कलहंसक अनुंधरी के यहाँ कहा ।
स्वास्थ्य कमठ का सहसा सुन्दरि पूर्णतया है बिगड़ रहा ॥ ४२ ॥

तब घबरा कर वह बेचारी एकाएक वहां आई ।
बिछी हुई थी कुटिल जेठ की हन्त जहाँ कि चारपाई ॥
उसे पता क्या था कि जाल है वहाँ नितान्त दुःखदायी ।
मृगीवधिक के ज्यों वह उसके चुङ्गल में थी फँस पाई ॥ ४३ ॥

हाय हाय हे जेठ महोदय पुत्री से यह कुटिलाई ।
करते हो क्या इस भूतल पर तुम्हे त्रपा न जरा आई ॥

नरको के दु:खों का डर भी तुमको है कि नहीं राई ।
यों वह बेचारी बहु कोई थी अत्यन्त तड़फड़ाई ॥ ४४ ॥

और अधिक वह कर सकती क्या अबला थी ताकि विवश थी ।
दुनियाँ अनधकारमय उसके लिए हुई आई गस थी ॥
फिर भी उस नर राक्षस को उस पर कुछ आई नहीं दया ।
बलपूर्वक उस बेचारी का शीलरत्न हर लिया गया ॥ ४५ ॥

इधर गया कलहंस जो किसी राजपुरुष को ले आया ।
लाकर सारा दृश्य उसे उसने स्पष्टतया दिखलाया ॥
सुनी अनेकानेक बात पहले भी इसकी राजा ने ।
खोल दिए फिर कान बात इस ऐसी मोटी ताजा ने ॥ ४६ ॥

इतने में ही ग्रामान्तर से आ पाया मन्त्री भी था ।
इस अघटित घटना को सुनकर हुवा बड़ा दु:खित जी था ॥
फिर भी अग्रज हैं ये जाने ऐसा कह सन्तोष लिया ।
प्रत्युत बोला नृप से कि वृथा लोगों ने है तूल दिया ॥ ४७ ॥

किन्तु भूप था जानता कि यह नीतिमान है क्या बोले ।
गृहच्छिद्रको अपने मुँह से स्पष्टता कैसे खोले ॥
अपराधी को दण्डित करना कार्य किन्तु मेरा ऐसा ।
शोच कमठ का मुँह काला कर दिया निकाल देस में से ॥ ४८ ॥

कर तापस का ढोङ्ग रामगिरि पर वह रहने लगा अहो ।
फिर भी मरुभूति के विषय में वैर कहाँ क्या गया कहो ॥

शोचा करता था कि दुष्ट मरु को मैं कब मारूँ कैसे ।
उसके द्वारा ही मुझको ये कष्ट हुए सब हैं ऐसे ॥ ४९ ॥

चिन्तित था मरुभूति उधर भाई के दण्डित होने से ।
कहाँ गया फिर समाचार आवे ऐसा किस कोने से ॥
पता लगा तो बोला भाई से मिलने को जाना है ।
नृप न कहा–नहीं, क्योंकि वहाँ कपटपूर्ण वह बाना है ॥ ५० ॥

फिर भी गया एक दिन अग्रज आगे उसके शीश धरा ।
उसने इसके बड़े जोर से पत्थर मारा ताकि मरा ॥
यह तो हुवा दृश्य भाई का अब भगिनी का भी सुनलो ।
संसारी नाता मतलब का जिसको सुनकर तुम गुणलो ॥ ५१ ॥

एक नगर का सेठ बहुत धनवान सत्यनिष्ठा वाला ।
जिसकी स्त्री के दो सन्ताने बालक एक और बाला ॥
सुत की शादी तो जैसी होती है वैसी हुई वहाँ ।
उसके बारे में तो कुछ भी कहा है ही नहीं यहाँ ॥ ५२ ॥

किन्तु सुत्ता की शादी तो अपने से भी अच्छे घर में ।
उसके साथ की गई रूपादिक गुण सब थे जिस वर में ॥
दिया गया सामान सब तरह का सुन्दरतम दहेज में ।
जिसकी सूची नहीं अहो क्रमवार याद है आज हमें ॥ ५३ ॥

जिसके बालक और बालिकायें अनेक हो पाई थी ।
पेज भात में भाई ने तब उदारता दिखलाई थी ॥

यों हो पाया था भाई के साथ बहन का प्रेम बड़ा ।
किन्तु इधर अब दैवराज का एकाएक चित्त बिगड़ा ॥ ५४ ॥

कहीं पाट में लगी आग तो कहीं लूट हो पाई थी ।
शेष रहा वह गया एक दिन बाढ़ नदी की आई थी ॥
सारा कारवार पट्ट हुवा और न यहाँ कमाई थी ।
देने वालों को देवे क्या पास रही क्यापाई थी ॥ ५५ ॥

नित्य नई खाने की चिन्ता से भी आकुलताई थी ।
बच्चा मांगे पुस्तक पट्टी फुट मांग रही बाई थी ॥
जनकी जनक वृद्ध हो पाए इनकी सेवा भी करनी ।
किन्तु करे क्या पग नीचे से निकल रही थी यों धरिणी ॥ ५६ ॥

भाई ने शोचा कि चलो अन्यत्र कहीं कुछ करने को ।
हे आत्मन् क्यों पड़े कहो बे मौत यहाँहो मरने को ॥
चलते चलते विचार आया देखो बहन समर्थ रही ।
चलो वहीं कुछ मिले सहारा तो हो जावे काम सही ॥ ५७ ॥

गया वहाँ तो वह बोली मैं तुमको नहीं जानती हूँ ।
जावो सराय में जा ठहरो यह ही ठीक मानती हूँ ॥
बच्चे बोले हे माँ मामा तो आँखे थी दिखलाई ।
इसी वेश में मामा हो यह बात नहीं मुझको भाई ॥ ५८ ॥

तब फिर था क्या मार्ग पड़ा उलटे पैरों उसको आना ।
अपनी भूल हुई पर केवल वहाँ निरन्तर पछताना ॥

जब दिन उलटा हो तब तन का कपड़ा भी वैरी माना ।
गया भीख को भी रीता आवे न मिले दाना ॥ ५९ ॥

किन्तु दशा एक सी किसी को नहीं रहे यह दिनकर भी ।
उगता है तो छिपता है फिर छिपा चान्द हो उदित तभी ॥
यह कुछ आगे बढ़ा कि बन में कहीं साधु थे मिल पाए ।
दर्शन किए खुश हुवा दिल में भाग्य उदय अब हो आये ॥ ६० ॥

दुरित दूर अब गए सभी हो पाऊँगा क्यों न सफल मैं ।
मुनि चरणों की रज को ले वान्धी यों अपने अंचल में ॥
श्रीपुर में पहुँचा कि वहाँ था ऐसा सुनने में आया ।
नृपसुत का अहिदंशहरे वह पावे मुँह मांगी माया ॥ ६१ ॥

जाकर देखा भूरिसपेरों ने जिसका पार्श्व गहा है ।
सफल न कोई हो पाया है पुत्र अचेत हो रहा है ॥
नमस्कार मन्त्रोच्चारण कर वह रज जहाँ लगाई थी ।
सोकर ही मानो उठ पाया ऐसे जय हो पाई थी ॥ ६२ ॥

है धर्म की महिमा कि देखो झट कटी सारी बला ।
पाकर अतुल सम्पत्ति नृप के यहाँ से वापिस चला ॥
आया बहिन के गाँव में कि सराय में ठहरा जहाँ ।
दौड़ी चली आई बहिन बोली कि भैया क्यों यहाँ ॥ ६३ ॥

कोई अगर सुनले कि भाई बहिन का आया यहाँ ।
मुझ को जगह फिर मुँह दिखाने के लिए भी हो कहाँ ॥

उठ चल हमारी साथ हम तुम को यहाँ रहने न दें ।
सुरसरी के शुभ सलिल को उलटा अहो बहने न दें ॥ ६४ ॥

卐 कुण्डलियाछन्द 卐

देखा भाई बहिन का, कैसा है व्यवहार ।
हन्त हन्त संसार में स्वार्थ पूर्ण परिवार ॥
स्वार्थ पूर्ण परिवार करे मतलब की यारी ।
अगर न मतलब सधे वहाँ देता है गारी ॥
यह ही है सुन हे समर्थ जग जन का लेखा ।
तुमने सोचा नहीं सिर्फ आँखों से देखा ॥ ६५ ॥

❀ ❀ ❀

卐 स्वेच्छया एक आता है तो दूसरा जाता है 卐

यह संसार सराय यहाँ जो कोई भी आया ।
अपना अपना ध्येय लिए क्या पुत्र पिता क्या जाया ॥
जहाँ ध्येय पूरा हुवा कि वह गया, नहीं फिर आया ।
कदली तुल्य यहाँ विज्ञों ने कोई सार न पाया ॥ १ ॥

किन्तु यहाँ पर अहो मोह ने ऐसा जाल बिछाया ।
जिस में इस चेतन पक्षी को इस ने खूब फँसाया ॥

मेरा मेरा कर जो इनके पीछे ही लग पाया ।
आने पर तो मुदित हुआ जाने पर रुदन मचाया ॥ २ ॥

इन में हो वियोग किसका भी योग न ऐसा होवे ।
कुलदेवी की कृपा रहे जो संकट सब ही खोवे ॥
सुखी रहूँ मैं सदा और यह मेरा कुटुम्ब सारा ।
इसमें भी उडुगण में शशि सम सुत यह मुझको प्यारा ॥ ३ ॥

हृष्ट–पुष्ट कर इसे कि इसकी शादी भी करवाऊँ ।
नाती हों अनेक जिनको गोदी में खूब खिलाऊँ ॥
इसके लिए परिश्रम कर मैं वित्त जोड़ धर जाऊँ ।
कुबेर से भी श्रेष्ट कोश को अक्षय कर बतलाऊँ ॥ ४ ॥

ताकि इसे कर सुखी बुढ़ापे में मैं सुखी कहाऊँ ।
इस आत्मज की देख रेख में कभी न कष्ट उठाऊँ ॥
इस ऐसे विचार में पड़ कर दौड़–धूप करता है ।
आशा पिशाचिनी का दर्पण करने को मरता है ॥ ५ ॥

दीन हीन लोगों के तनु का खून चूष धरता है ।
घोर पाप पाखण्ड से नहीं कभी कहीं डरता है ॥
इतना सब करने पर भी यह अहो ठगा जाता है ।
अन्त आपकी भूल हुई पर मन में पछताता है ॥ ६ ॥

क्योंकि न विवाह होता तब तक कुछ कहना करता है ।
किन्तु बाद में घर वाली का अनुशासन धरता है ॥

सुत के पिता माता का उसको क्या कहना भाता है ।
बात बात में अहो सामना करने लग जाता है ॥ ७ ॥

एक समय की बात है कि था एक बहुत धन वाला ।
जिसने अपने परिकर को तनमन से पोषा पाला ॥
रात और दिन एक मानकर करता रहा कमाई ।
सुख से बैठा रहने को क्या घड़ी एक भी पाई ॥ ८ ॥

जब कोई भी साधु सन्त आकर हित की कहता था ।
तो उस पर वह आग बबूला सा हो यों रहता था ।
तुम तो हो बेकार और हम साहूकार कहावें ।
तुम्हें नहीं कुछ काम यहाँ अवकाश कहाँ से पावें ॥ ९ ॥

ऐसे अथक परिश्रम से धन सञ्चय बहुत किया था ।
जिसमें से धर्मार्थ न उसने कुछ भी कहीं दिया था ॥
हाँ लड़कों की शादी में तो यद्यपि खर्च किया था ।
भिन्न भिन्न धनवानों के घर उन्हें विवाह दिया था ॥ १० ॥

जिसके थे सुत सात जोकि सबही थे दृढ़ तनुधारी ।
कारबार में कुशल हो चले ये विस्तृत परिवारी ॥
हाँ उन बहुवों में आपस में कलह खूब होती थी ।
कोई कब तो कोई फिर कब फूट-फूट रोती थी ॥ ११ ॥

किस किस का मैं हुक्म बजाऊँ व्यस्त बहुत हो जाऊँ ।
इस घर के धन्धे में मैं तो पल भर चैन न पाऊँ ॥

नहीं बाप के यहाँ किसी का कुछ भी कहा सहा था।
प्रत्युत मेरा कहना लोगों के शिर सदा रहा था ॥ १२ ॥

किन्तु यहाँ पर तो सब ही हैं आज्ञा देने वाले।
अहो जरा भी दुःखदर्द की खबर न लेने वाले ॥
रोज रोज के इस झगड़े से जब सब थे घबराये।
हो लाचार अन्त में वे सब पृथक् पृथक् हो पाये ॥ १३ ॥

जो कुछ था धनमाल बराबर सब ने बांट लिया था।
नहीं किसी ने किसी बात पर कुछ भी उजर किया था ॥
किन्तु रहा अब इस बुढ़वे को कौन रोटियाँ देगा।
निर्णय इसका हुवा कि बारी बारी से खालेगा ॥ १४ ॥

कुछ दिन तो यों चला किन्तु फिर लगी बलासी उनको।
यह थी क्योंकि न इसमें कुछ भी देख रहे थे गुनको ॥
अब तक तो खाता था उतना धन्धा कर जाता था।
किन्तु न अब कुछ कर पाता था स्वयं तरस खाता था ॥ १५ ॥

उठने और बैठने में भी जिसे कम्प आता था।
अधिक बोलने में भी बुढ़वा अब घबरा जाता था ॥
अतः भग्न घट तुल्य न कोई को अब वह भाता था।
क्या सुत क्या सुतवधू चित्त सबका ही सकुचाता था ॥ १६ ॥

नाती पोते अब उसकी यों हँसी किया करते थे।
कोई भी तो नहीं जरा उससे अब वे डरते थे ॥

एक खोलता काँछ दूसरा पगड़ी उछाल देता ।
कोई ले भगता लाठी यों होता विह्वल चेताः ॥ १७ ॥

अतः पीट देता कोई को, तो रोकर भगता था ।
छोकरा कि उसकी माँ को तब बुरा बहुत लगता था ॥
कहने लगती मरा क्यों न यह भूत लग रहा जिसको ।
खाने को चाहिए व्यर्थ का हलवा मांडा इसको ॥ १८ ॥

और पीटने को देखो तो सही हमारा लड़का ।
अरे बाप रे क्या बतलाऊँ यह कैसा है बड़का ॥
धीरे धीरे यों बुढ़वे से रुष्ट हो चले सारे ।
कोई भी तो पास न आवे रहने लगे किनारे ॥ १९ ॥

किसी एक कौने में खटिया जिसमें खटमल भारी ।
कपड़े मैले बदबू वाले पूछे कौन वहाँ री ॥
घर के सब कोई खा लेवें तब बुढ़वे की बारी ।
कभी नहीं हो दाल वहाँ तो कभी नहीं तरकारी ॥ २० ॥

हन्त हन्त इस जीवन से तो मर जाना अच्छा है ।
बात बात में जहाँ तिरस्कृति किन्तुन कुछ पृच्छा है ॥
इन हरामखोरों को मैंने सौंप दिया धन सारा ।
अब हो तो क्या हो क्यों मैंने पहिले नहीं विचारा ॥ २१ ॥

यों था सोच रहा इतने में मित्र एक आ पाया ।
बोला क्या है चिन्ता क्यों है मुँह की बिगड़ी छाया ॥

कहने की कुछ बात नहीं पैसा पास न रह पाया ।
इसीलिए इन कुटम्बियों ने मुझे अतीव सताया ॥ २२ ॥

यह जनाब सुन कहा मित्र ने क्या चिन्ता है इसकी ।
मेरे पास उपाय है कि अब उषा बनेगी निश की ॥
जाकर बनवाये शीघ्रतया उसने थे लासानी ।
ताम्बे के नाना जेवर जिन पर सोने का पानी ॥ २३ ॥

जिन पर इतर छिड़क रूई के फहा पुनीत लगाये ।
एक मनोहर मञ्जूषा में उन्हें यथेष्ट सजाये ॥
दृढ़ ताले से बन्द किये फिर वह लेकर था आया ।
बोला लो सेठ जी संभालो गुप्त आपकी माया ॥ २४ ॥

जो मुझ पास आज तक थी फिर मैं अब घर जाता हूँ ।
सूची बार निगाह लीजिये उसको दिखलाता हूँ ॥
एक एक को निकाल कर फिर लगा वहाँ बतलाने ।
देखें क्या है लगे वहाँ पर पुत्रादिक थे आने ॥ २५ ॥

मन ही मन कहने लगे कि है अब भी इतनी पुञ्जी ।
जिस बुढ़ेवे के पास अहो यह देखो कैसा मुञ्जी ॥
क्यों फिर भी यह कष्ट पा रहा यो परवश होकर है ।
खावे पीवे मौज में रहे यह लक्ष्मी का घर है ॥ २६ ॥

हाँ हम लोगों ने भी देखो कैसी की नादानी ।
इसे समझ था लिया कि मानो अपस्थान की बानी ॥

किन्तु कहो कब ऐसी हमने बात जान पाई थी ।
अपने अपने मन में वधुवें भी यों पछताई थी ॥ २७ ॥

इसीलिए वे अपने अपने पतियों से यों बोली ।
नाथ ? हमारी बड़ी भूल थी, किन्तु हुई सो हो ली ॥
आगे तो यह याद रहे आपको सदैव मुझे वा ।
करे बड़ों की सेवा वह ही पावे मीठा मेवा ॥ २८ ॥

यदि इनमें से एक चीज भी खुश होकर दे देवें ।
तो हम अपने इस जीवन को नाथ? सफल कर लेवें ॥
कहीं सभी जों मिली कहो फिर तो है ही क्या कहना ।
मेरे पास न इन जैसा है एक भी अहो गहना ॥ २९ ॥

होने लगी टहल बुढ़वे की अब तो हद से ज्यादे ।
उसे चाहिए वह कोई भी बिना कहे ही ला दे ॥
कोई उसे नुल्हावे कोई उसके पैर दबावे ।
कोई कपड़े धोकर लावे कोई खाट बिछावे ॥ ३० ॥

दादा लगी आपको ठण्डक कुछ भी क्यों न दवा लें ।
चलो बनाया है अम्बा ने थोड़ा हलवा खालें ॥
खूब सार सम्भाल वहाँ अब होने लगी जरठ की ।
जिसका वर्णन करने को यह लेखिनी यहाँ पर थकी ॥ ३१ ॥

ठीक है कि संसार दास है लक्ष्मी का यह सारा ।
जहाँ न लक्ष्मी की दया वहाँ प्यारा भी हो न्यारा ॥

लक्ष्मी का यदि हो प्रसाद फिर पर भी घर वाला हो ।
जिसके बिना मनुज बेचारा कर्महीन ठाला हो ॥ ३२ ॥

उससे भी अधिक प्रभुता फिर यहाँ कामिनी की है ।
जिसके बिना युवक को लगती सम्पद् भी फीकी है ॥
जिसके चुङ्गल में फँस कर यह अहो भूल जाता है ।
जन्मप्रद मातापितादि को भी न देख पाता है ॥ ३३ ॥

प्रेम पात्र यद्यपि मानव का पुत्र न कम होता है ।
जिसको अङ्गज कहकर इसका मन संकट खोता है ॥
किन्तु स्त्री तो लगती है इसको दुनियाँ से प्यारी ।
कहता हे अर्द्धाङ्गिनी जिसे अङ्गना तथा नारी ॥ ३४ ॥

उसके लिए न खेने लायक को भी यह खेता है ।
उसको अगर न खुश देखे तो मर पूरा देता है ॥
हन्त नहीं यह शोचता कि जिसको तू कहता प्यारी ।
तेरा खून चूसने को वह नहीं जोक से न्यारी ॥ ३५ ॥

सधता इसका स्वार्थ तभी तक यह करती है यारी ।
किन्तु अन्त में टटोलती है तेरे धन की तारी ॥
कुछ तो इससे भी आगे बढ़ती हैं देखो भाई ।
पति के मार डालने को भी खोदा करती खाई ॥ ३६ ॥

किन्तु न उसके दुर्गुण को भी देख गोर लाता है ।
अहो प्रेम के कारण उससे खुद धोका खाता है ।

उदाहरण इसके अनेक हम शास्त्रों में हैं पाते ।
एक यशोधर नृप का केवल तुमको यहाँ सुनाते ॥ ३७ ॥

पूर्वकाल में महा यशस्वी हुवा यशोधर राजा ।
सदा बजा करता था जिसके मन्दिर पर शुभ बाजा ॥
वह नीरोगशरीर सुलक्षण सुभग शुभोदय वाला ।
सौर्योदार्यधैर्यवीर्यादिक शस्तगुणों की माला ॥ ३८ ॥

राणी उसकीपरम सुन्दरी यौवन में मदमाती ।
उभरी हुई गैन्द युग जैसी जिसकी महती छाती ॥
मुख मण्डल मन मोहक जिसका चन्दा सा चमकीला ।
अत्युन्नत था नितम्ब मानो मरुस्थली का टीला ॥ ३९ ॥

कटीभाग किन्तु स्वभाव से दुर्बल अतः लचीला ।
स्वर्ण घटित सा शरीर सारा कोमल पीला पीला ॥
काम केलि के लिए जहाँ पर सरसी नाभि बनी थी ।
मृदुलोमावलि दूर्वा जैसे जिसके पास घनी थी ॥ ४० ॥

राजा उसकी रुपराशि को देख देख जीता था ।
चातक जैसे घनमाला के जल को ही पीता था ॥
नयन काम के बाण सरीखे चपल और तीखे थे ।
कोमलता को कमल उसी के हाथों से सीखे थे ॥ ४१ ॥

करता था वह काम कि राणी बनी रहे यह राजी ।
फिर भी इस बारे में उसकी पेश न आई बाजी ॥

राणी का मन राजा के प्रति रहा प्रेम से रीता ।
क्योंकि चित्त उसके को राज महावत ने था जीता ॥ ४२ ॥

रोज रात को राजा को थी नींद जबकि आ जाती ।
तब धीरे से सेज से महारानी वह उठ जाती ॥
अपने प्राणपियारे से दिल खोल वहाँ बतलाती ।
रही कौनसी रोकथांम थी जिसके वह सरमाती ॥ ४३ ॥

कुछ दिन यों बीते कि एक दिन नींद न नृप को आई ।
प्रजानिरीक्षण निरततया तनु में थकान हो पाई ॥
निश्चल था यों हुवा बोलने से भी जहाँ न बोला ।
है अचेत यह राणी ने भी अपने मन में तोला ॥ ४४ ॥

वह सहसा उठ चली रोज की भाँति जहाँ जाना था ।
नृप भी उसके पीछे पीछे होलिया रवाना था ।
देख दृश्य को भूमिपाल था मन ही मन पछताया ।
अहो देखने में आई है कैसी अद्‌भुत माया ॥ ४५ ॥

कहाँ मखमली सेज और यह कहाँ फटी सी कन्था ।
कहाँ स्वर्ण का महल कहाँ कूड़े से पूरित पन्था ॥
कहो कहाँ मैं और कहाँ यह पीलवान बेचारा ।
अहो काम की वड़म्वनाका देखा आज पसारा ॥ ४६ ॥

किन्तु वृथा मैं खेद में पड़ा क्योंकिल पछताता हूं ।
ढङ्ग यही क्या इस भूतल पर नहीं देख पाता हूँ ॥

क्योंकि शूकरीको तो केवल पुरीष ही भाता है ।
क्या उस पगली का मानस हलवे पर ललचाता है ॥ ४७ ॥

ऐसे अपने मनको सन्तोषित कर नृप बेचारा ।
वापिस आकर लेट रहा था मनोव्यथा का मारा ॥
कुछ पीछे झख मारमूर कर आई जब थी राणी ।
इस रजनी में कहाँ गई थी यों नृपकी सुन वाणी ॥ ४८ ॥

बोली आज पेट में कुछ भी गड़बड़ है हो पाई ।
अतः क्या करूँ शौच के लिये जङ्गल जाकर आई ॥
सोचने लगा नृप कि अहो यह कैसी चाल बताई ।
मानो मैंने कुछ न किया है यों कर रही धिटाई ॥ ४९ ॥

अहो देव भी ठगे गए जिस औरत की माया से ।
कैसे पेश पास के नर फिर इस अघ की छाया से ॥
मन रखती है किसी और पर वचन किसे देती है ।
एक कटाक्ष बाण से पर के मन को हर लेती है ॥ ५० ॥

शोचा करता है मानव यह मुझ पर ही राजी है ।
किन्तु न जाने इसकी किसके लिए देह ताजी है ॥
कवियों ने है कहा इसे अबला फिर भी है प्रबला ।
जिस कुकर्म के लिए कि मानस इसका यदि हो बिचला ॥ ५१ ॥

फिर उस में हो कुछ भी बाधा उमे पार कर जाती ।
अपने साहस के द्वारा यह देर नहीं कुछ लाती ॥

जब हो जारासक्त वहाँ खुद पति को मार गिराती ।
क्या सुततात पिता माता है कुछ भी ध्यान न लाती ॥ ५२ ॥

जिसने इस पर किया भरोसा ठगा गया वह भाई ।
इसे जिन्होंने तजा उन्हीं मुनियों की है चतुराई ॥
मैं तो था शोचता कि मैं हूँ राजा मेरी नारी ।
किसे देखती होगी लेकिन झूठ रही वह सारी ॥ ५३ ॥

इस दुष्टा ने तो मुझ को भी ठगा आजहै कैसे ।
मानो मैं कुछ भी न जानता हूँ भोन्दू हो जैसे ॥
अहो आज तो बहा जा रहा पहाड़ भी पानी में ।
सोने की छाली भी देखो बिकी यहाँ बानी में ॥ ५४ ॥

था जिसको हे प्रभो बनाये हुये राजरानी मैं ।
बनी महावत की जनी यहाँ भड़की नादानी में ॥
क्या इसकी करणी का अब मैं इसको मजा चखाऊँ ।
याद रखे जिसको यह भी मैं क्यों कायरता लाऊँ ॥ ५५ ॥

अथवा क्यों मैं रोष ला रहा दोष यहाँ क्या इसका ।
वह वैसा करता है ही जैसा स्वभाव हो जिसका ॥
दोष हुवा मेरा कि बना मैं महामूढ़ अज्ञानी ।
कांशी को ही मूर्ख तया मैंने चाँदी कर मानी ॥ ५६ ॥

दीनदयालो ? मुझे संभालो बहा जा रहा जिन ! मैं ।
मुझे चाहिये क्या करना अब इस ऐसी उलझन में ॥

पड़ा भूप था इस विचार में तब झट पो फट पाई ।
हट मिथ्यात्व दशा मानों सम्यक्त्व दशा हो आई ॥ ५७ ॥

दोषाकर था जो कि चमकता रहा तिमिरि होने में ।
अपना सा मुँह लिये हुए वह छिपा एक कौने में ॥
पथ प्रदर्शक सूर्य देव का होगा उदय इसी से ।
पहिना प्राची देवी ने था लाल दुकूल खुशी से ॥ ५८ ॥

अपने पति के पास रहे है धर्म यही पत्नी का ।
चकवे के सन्निकट हो लिया था यों स्थल चकवी का ॥
राज–रानियां पर नर का मुँह कभी न देखें भाई ।
कमोदिनी ने अपनी आँखें यों थी मून्द बताई ॥ ५९ ॥

चुगल कोर या चोर का नहीं रहा यहाँ अब धन्धा ।
यही शोच कर मानों घू घू वहाँ हो रहा अन्धा ॥
सोते रहने का न समय अब यों अलिके छल वाला ।
कमलनियों ने था अपनी आँखों में अञ्जन डाला ॥ ६० ॥

उदयाचल की गहन गुहा से निकल अर्क केशरि ने ।
किया आक्रमण तमस्तोम मातङ्ग कुम्भ पर बलि ने ।
महती शोणित धारा जो उसकी थी बह कर आई ।
प्रातः सन्ध्या नाम से वही भूतल पर कहलाई ॥ ६१ ॥

अब से छः घण्टे पहले था प्रलय काल सा आया ।
अब नूतन रचना से भूपर अपना रङ्ग जमाया ॥

गुरु वाणी की तुल्य पक्षियों की चक चक हो पाई ।
निशा राक्षसी गई प्राणियों में चेतनता आई ॥ ६२ ॥

उठा भूप तब और जन्म दात्री के समीप आया ।
नमस्कार कर कहा जननि ? है स्वप्न अशुभ हो पाया ॥
मेरी जगह महावत को मैं देख वहाँ घबराया ।
अतः शोचता हूँ कि भाग्य मेरे ने चक्कर खाया ॥ ६३ ॥

ताकि तपो बन को जाऊँ मैं तप कर दुरित खपाऊँ ।
आया तेरे पास हूँकि मैं आशिष तेरी पाऊँ ॥
माता बोली बेटा यह चिन्ता की बात नहीं है ।
स्वप्न किसी मानव का सच्चा होता कभी कहीं है ॥ ६४ ॥

फिर भी शङ्का है यदि कोई तो कुल देव मना ले ।
वह सारे दुरिताक्रमणों को बातों में हर डाले ।
मरे विचार में तप भूखे नङ्गे ही करते हैं ।
ताकि इसी पथ से वह अपना उदर सदा भरते हैं ॥ ६५ ॥

किञ्च यहाँ तप करना यह साधारण बात नहीं है ।
जहाँ कि शीत घाम आदिक की अड़चन नई नई है ॥
तेरा यह सुकुमार शरी सहेगा कैसे उनको ।
इसीलिये है मेरा कहना छोड़ वत्स ? इस धुन को ॥ ६६ ॥

नृप ने कहा कि एक तरह तेरा भी कथन सही है ।
किन्तु करूँ क्या अब मेरा मन लगता यहाँ नहीं है ॥

अहो स्वप्न की बात का मुझे जहाँ स्मरण आता है ।
तो इस गेहवास से मेरा हृदय कांप जाता है ॥ ६७ ॥

दोहा – रानी ने यह सब सुना तब वह हुई सचेत ।
शोचा मेरे चरित का ही है यह संकेत ॥ ६८ ॥

अब तो मुझको चाहिये व्यर्थ न खोना काल ।
न रहे वंश न वंशरी बजे करूँ वह हाल ॥ ६९ ॥

लाई दूध और दोनों को पीने को था दिया जहां ।
पीते ही माता सुत दोनों लोट पोट थे हुए वहाँ ॥
थोड़ी देर हाथ पैरों को फटकारा चल पुनः दिये ।
सदा के लिये अपने मन का मन में ही वृतान्त लिये ॥ ७० ॥

यद्यपि कोई कोई बनिता पतिव्रता भी होती है ।
जो अपने नर के कहने में चल निज कष्मल धोती है ॥
पतिके सो जाने पर उसकी पग चम्पीकर सोती है ।
अपयश के खाने को नित्य प्रयत्न शीला होती है ॥ ७१ ॥

उसके उठने से पहले उठकर घर धन्धा करती है ।
अभ्यागत आदिक का स्वागत करने में मति धरती है ।
रोगादिक आने पर दवादि का प्रबन्ध कर सकती है ।
मृदु सम्भाषण के द्वारा मानव का मन हर सकती है ॥ ७२ ॥

फिर भी पीड़ा तो उसकी उसको ही सहनी पड़ती है ।
जहाँ कि पामादिक होकर इस मानव की तनु सड़ती है ॥

इसी तरह से कुटुम्ब का भी कोई सज्जन होता है ।
तो इसके कष्ट को देख कर मन ही मन में रोता है ।।८३ ।।

अपने पैसे से वह इसकी भर सक सहाय करता है ।
अपनी करनी का फल तो यह किन्तु आप ही भरता है ।।
अतः बन्धु मोह में फँसकर कोई कभी अनर्थ करे ।
केवल उनके लिये कहो क्यों अपने हितको भूल मरे ।। ८४ ।।

कुण्डलियाँ जिन वाणी का है यही मित्र सुनो व्याख्यान ।
अभिरुचि परोपकार में निज हित का हो ध्यान ।
निज हित का हो ध्यान करे फिर विलम्ब कैसे ।।
तजे नहीं क्यों जगविभूति को विभूति जैसे ।
बैठे एकान्त में अकेला निर्वृति राणी ।
करे प्रीति आ पास कह रही है जिन वाणी ।। ७५ ।।

❀ ❀ ❀

卐 मानव शरीर का हाल 卐

हे नाथ आज मेरे, यह बात कान आई ।
मुझको हुवा अचम्बा, जो मित्र ने सुनाई ।।
पामादिदेह में हो, सो क्यों ? मुझे बता दो ।
जब ठीक ठीक खावे, पीवे जरा जता दो ।। १ ।।

देखो कि आज तक है, माथा न दूख पाया ।
मेरा यतः गुटाला, मैंने न कुछ मचाया ॥
खाता यथा समय मित्त, हूँ भूख जब कि लगती ।
करता नहीं जरा भी मैं हूँ वयस्य । गलती ॥ २ ॥

हूँ टहलता यथा विधि, फिर लेट हूँ गलाता ।
है प्यास जब सताती, तो नीर पी बताता ॥
यदि चित्त चाहता है, हूँ धाम देख आता ।
है भृत्य आदिकों का, जिस ठौर खूब तान्ता ॥ ६ ॥

जब हो थकान तनु में, देरी नहीं लगाऊँ ।
जा सेज पर सयाने ? विश्राम खूब पाऊँ ॥
स्वयंमेव ठीक बेला–में किन्तु चेत जाऊं ।
यों नियमबद्ध सारा, ही समय मैं बिताऊँ ॥ ४ ॥

तनु चुस्त इस तरह से, मस्तिष्क तेज ताजा ।
होकर रहूँ तथा मैं ज्यों सार्व–भौम राजा ॥
क्यों रोग शोक होवे, ले देख तू जरा जा ।
मेरे मकान पर है, बजता सदैव बाजा ॥ ५ ॥

जो मूढ धीठता से, निस्सार चीज खावे ।
भोजन तथा समय पर, समुचित न दीन पावे ॥
जो स्वैर हो समय को, आलस्य में गमावे ।
वह भूल आप की से, क्यों किल न रोग पावे ॥ ६ ॥

उसने कहा कि देखो, क्या तुम न हो परखते ।
दश जीव है सदन में, रुचि भिन्न-भिन्न रखते ॥
इच्छानुसार पाया, भोजन यथेष्ट खाया ।
वरनापि पेट भरना, हो भूख ने सताया ॥ ७ ॥

है भूख और भोजन तैय्यार हो न पाया ।
रुकना वहाँ पड़ेगा, न कि जो प्रसङ्ग आया ॥
भोजन बना हुवा है, फिर वेग ने दबाया ।
आना पड़े वहाँ जा ऐसी विचित्र माया ॥ ८ ॥

तेरे समान कोई, था भूप और मंत्री ।
मेरे समान उसका, नृप ने कहा कि मन्त्रिन् ? ॥
मैं हूँ बड़ा मिताशी, मेरा स्वभाव ऐसा ।
है अधिक अल्प खाना, अन्याय मार्ग जैसा ॥ ९ ॥

कुछ रोज बाद नृप को, न्योता दिया सचिव ने ।
व्यञ्जन जहाँ बहुत से, थे मनो मोहक बने ॥
बोला नरेश मुझको, दो दाल और फुलकी ।
कुछ भी नहीं जरूरत इस और अन्न कुल की ॥ १० ॥

पहिले उसे अतः था वह ही गया जिमाया ।
अब था जहाँ कि राजा, भर पेट जीम पाया ॥
देखो जरा इसे है हलवा गया बनाया ।
हम भी न खा सकेंगे, यदि आपने न खाया ॥ ११ ॥

कह इस तरह सचिव ने, थोड़ा उसे चखाया ।
हो बाध्य भूमि पति ने, भी था जिसे कि खाया ॥
अम्बा सतीश की ने, है प्रेम से बनाया ।
कुछ लीजिये इसे भी, गुलकन्द यों खिलाया ॥ १२ ॥

मेरे न हाथ से क्या, लेंगे सुसाधु सेवी ।
यों बोल कर जलेबी, दे गई एक देवी ॥
जिसमें अनार दाना,–दिमनोज्ञ चीज नाना ।
लीजिये जरा चटनी, हो जीर्ण ताकि खाना ॥ १३ ॥

यह है पुनीत ताजा, खावे अवश्य राजा ।
इसको कि जोर दे यों था दिया झगिति खाजा ॥
मतलब कि खूब ही था भूमीश को खिलाया ।
फिर अमृत यों बता कर था दूध भी पिलाया ॥ १४ ॥

चीजें अभी बहुत सी, हैं रह रहीं बकाया ।
जिनमें कि आपने नृप ? है अंश भी न खाया ॥
नृप ने कहा सचिव जी, कैसा कि बेहया हूँ ।
आ बात आपकी में, मैं खूब खा गया हूँ ॥ १५ ॥

इस जठर में हमारे, जल को जगह नहीं है ।
मित–भोजिता कहूँ क्या, वह दूर हो रही है ॥
इस मर्त्य जीवनी में, ऐसे प्रसङ्ग ढेरों ।
क्या प्राप्त हैं न होते, तुम ही गुणीश ? हेरो ॥ १६ ॥

अब हूँ तुम्हें सुनाता, वार्ता विहार की, को ।
इस ही तरह सुनो तो, कर सावधान जी को ॥
माना कि होश में, हो तुम जा रहे इधर से ।
फिर मुढ़ दूसरा है, जो आ रहा उधर से ॥ १७ ॥

अपनी अयोग्यता से, संघट्ट आ लगावे ।
तुम से कहो वहाँ क्या, होने उपाय पावे ॥
लड़ने लगें परस्पर, पशु दो खड़े खड़े ही ।
आ गिरे वे अचानक, करे क्या वहाँ देही ॥ १८ ॥

सोता जहाँ कि नर है, छत आद्धि टूट करके ।
सहसा न आ पड़े क्या, तनु पर शरीर धर के ॥
फैले हवा विषैली हो रहे देह मैली ।
मलमूत्र आदि की जो है बनी स्वयं थैली ॥ १९ ॥

इस तरह से बहुत से, कारण कलाप होते ।
हैं दीखते कि जिन से, मानव सदैव रोते ॥
अनुकूल साधनों का, सद्भाव हो तथापि ।
सड़ रहे आप से भी, यह मर्त्य देह पापी ॥ २० ॥

इसका स्वभाव ही है हे मित्रवर्य ऐसा ।
अब अधिक मैं कहूँ क्या, जल का कि तरल जैसा ॥
है आज तो जवानी, मुदिराधिकार बानी ।
अतएव दीखती है, तुमको न अकनिशानी ॥ २१ ॥

वैशाख तुल्य होगा, वार्द्धक्य तब न पानी ।
यह रहेगा, बढ़ेगी, तृष्णा महाघनानी ॥
जो देह है गँठीला, हो रहे वही ढीला ।
मुख कान्तियुत सजीला, वह शुष्क वहाँ पीला ॥ २२ ॥

जो केश आज काले, शिर के कि भंवर वाले ।
चैत्र में धान्य की ज्यों श्वेतता वहाँ आले ॥
जो उदित हो चढ़े रवि, दोपहर तक सुबह से ।
फिर गिरा देख उसको, यह मूर्ख मानव हंसे ॥ २६ ॥

है हाल यही मेरा, शोचे न किन्तु मन में ।
होती न पूछ कुछ है, जरठ की प्रजा जन में ॥
यौवन छके इतर जन उपहास कर सताते ।
खुद के न अङ्ग इसके हैं काम कर बताते ॥ २४ ॥

होने लगे जरा से, सर्वत्र सन्धि पीड़ा ।
मानो शरीर तरु में, लग रह कुटिल कीड़ा ॥
श्वासादि आमयों की, है बाढ़ तुल्य आती ।
कफ के विकार से हो, संव्याप्त जहाँ छाती ॥ २५ ॥

नीरस शरीर तरु को, है वायु बहु कँपाती ।
जिस पर कि सज्जनों को, करुणा सदैव आती ॥
है रोग दुःख देता, जैसा विकार विष का ।
होता न वृद्धता से, उतना बिगाड़ इसका ॥ २६ ॥

धरती यथा समय है यह तो मनुष्य तन को ।
हां रोग है दबाता, सहसैव किन्तु जन को ।।
घिसती शनैः जरा है, रज्जू यथा दृषद को ।
धनकी समान आमय, दे तोड़ किन्तु इसको ।। २७ ।।

जाने जिनेश होगा, कब कौन रोग किसको ।
हम और तुम सरीखे, कह सकें नहीं इसको ।।
दृष्टान्त एक इसका, तुमको बता रहा हूँ ।
चक्री सनत्कुमार प्रति चित्त ला रहा हूँ ।। २८ ।।

जिसके शरीर की थी, की इन्द्र ने बड़ाई ।
सौन्दर्य उस सरीखा है और में न राई ।।
कवि की सुलेखिनी भी जिसको न बता पावे ।
जिसको कि देख विस्मय, पर कौन नर न आवे ।। २९ ।।

है कौन वह चितैरा जो इस लिख दिखावे ।
यह जीभ भी उसे फिर किस तरह कह सुनावे ।।
हो गए और होंगे हैं भी अनेक ऐसे ।
जो बने रूप में हैं श्री कामदेव जैसे ।। ३० ।।

उस चक्रिशक्र जैसा, तो काम भी नहीं है ।
कोई हुवा न होगा, उस तुल्य चक्र ही कहीं है ।।
इस बात को सुनी तब, दो देव उठ चले थे ।
अपने विचार से जो, आश्चर्य में रले थे ।। ३१ ।।

देखें कि वहाँ कैसी, हैं रुपराशि ऐसी ।
निज जीभ ले बताई, सुरनाथ ने कि जैसी ।।
सम्भव कि इन्द्र का वह, हो प्रिय तथा हितैषी ।
अतएव कर बताई, हो व्यर्थ बात ऐसी ।। ३२ ।।

आये उसी समय वे, श्री हस्तिनागपुर में ।
कौतुक लिये हुऐ थे, अपने पुनीत उर में ।।
घर लिया था उन्होंने, सहसैव वृद्ध चोला ।
चक्रीश की कृपा से, दरबान ताकि बोला ।। ३३ ।।

आइये महाराजा, हैं महल में बिराजे ।
जाइये वहाँ सुख से, बज रहे जहाँ बाजे ।।
कर नमस्कार बैठे, आ पास चक्रपति के ।
तब वाक्य यों हुये थे, आतिथ्य पूर्ण मति के ।। ३४ ।।

जिनको कि देख मेरी, यह चित्तवृत्ति हरषी ।
वह कौनसी हुई है, सारसविहीन सरसी ।।
आपके बिना, क्यों फिर, है किया धन्य मरु को ।
आपने भी कहें तो इस हत प्रेम तरु को ।। ३५ ।।

भेंट में वाक्य मोती, नृप को कि वहाँ ये थे ।
साश्चर्यवारि चित्ता, म्वुधिधरों ने दिए थे ।।
आपकी रुपराशि प्रतिदर्शनाभिलासी ।
आपके निकट हैं ये, हम दूर देश वासी ।। ३६ ।।

जब चले थे युवा थे, वार्द्धक्य धार पाये ।
अब आप ही विचारे, हैं कहा से कि आये ॥
केवल वहाँ हमारे, कानने नाथ ! पाई ।
आपके इस अलैकिक,-सौन्दर्य की बड़ाई ॥ ३७ ॥

फिर आँख यों रहे क्यों, पाये बिना मिठाई ।
इसलिये यहाँ आना, है हुवा सुजन साई ॥
फिर कलह किन्तु दूनी, वह हुई है न ऊनी ।
नैत्र ने अधिक पाई, मानो मिली कि सूनी ॥ ३८ ॥

चाहा तृषा मिटाना, इस वृद्ध चित्तने था ।
लावण्य यहाँ ऐसा, यह पता क्या इसे था ॥
अब और भी बढ़ी है, वह इस वराक की हा ।
हम करें क्या विभो भी, वह ही यहाँ समीहा ॥ ३९ ॥

उन्मत्त बन रहा है, मानस अहो हमारा ।
जग को प्रमाद कारी, पी रूप यह तुम्हारा ॥
क्या ही मनोज्ञ मुख है, जिसको कि देख सुख है ।
है भाल विशद कैसा, कान्ति का जहाँ रुख है ॥ ४० ॥

देखो उठे हुये ये, मृदु गाल है गुलाबी ।
जिनमें भरी हुई है, सौन्दर्य की नवाबी ॥
यह उरस्थल नृपति का, कितना विशाल दृढ़ है ।
माना हुवा महीपर, श्री के लिये कि गढ है ॥ ४१ ॥

शाखा सुरद्रु कीसी, लम्बी अहो भुजायें ।
हम सभी क्या न मिलकर, निजका कि सुयश गायें ॥
ग्रीवा वितस्ति से तो नापी जा सकेगी ।
हे कौन जीभ जग में, महिमा कि जो कहेगी ॥ ४२ ॥

देखा जरा कि भोयें, बन रही हैं सजीली ।
स्मर कीरचंचु जैसी, यह नाक भी नुकीली ॥
ये चरम कमल कोमल सौभाग्य सरोवर के ।
हैं भाग्यवान बनते नर जिन्हें शीषधर के ॥ ४३ ॥

एक से एक बढ़ कर, अबयव सुचारु सारे ।
जिनके विपुल कथन में सुर राज सही हारे ॥
है रूप यहाँ ऐसा, अन्यत्र नहीं वैसा ।
जिसके सुभाग आगे, स्मर नीर भरे जैसा ॥ ४४ ॥

वह कौन हुवा माली, जिसने कि नीव डाली ।
इस सुतरु की अहोछवि, यह विश्व से निराली ॥
जिसको कि देख आँखें, ये सफल हैं हमारी ।
जोढूंढ़ धरें उपमा, हो वही यहाँ गारी ॥ ४५ ॥

इस तरह देख सम्प्रति, वह सुभग वारि बरसा ।
हो रही चक्र–पति की, थी मनो–मही सरसा ॥
मुझ तुल्य अहो मेरे, इस रूपने कि पाई ।
चक्रिता ताकि देखो, है दूर तक बड़ाई ॥ ४६ ॥

अङ्कुर घमण्ड तरु का, उत्पन्न हो रहा था ।
उस चक्र नाथ ने तब, इस तरहसे कहा था ॥
उन सत्यप्रवासियों से, कि–न चकित हो इसी से ।
यह तो न कुछ यहाँ है, तुम पूछलो किसी से ॥ ४७ ॥

मुझ ठीक रूप पर भो, पड़ रहा किन्तु पडदा ।
अभ्यङ्ग मर्दका है, इस देह में कि कडदा ॥
मैं स्नान कर चुकूं फिर वस्त्रादि पहन लेऊँ ।
बैठूँ कि जा सभा मैं, अवकाश वहाँ देऊँ ॥ ४८ ॥

मुझ रूप को तुम्हारा, मन देखकर छकेगा ।
उस समय पर नहीं फिर, कुछ धैर्यधर सकेगा ॥
यों बोलकर उन्हें तो, दिलवा दिया उतारा ॥
था इधर चक्र पति ने निज देह को सिगांरा ॥ ४९ ॥

सत्तम तनुत्र पहना, भले से भला गहना ।
शिर तिल का भी लगाया, था सुप्रसन्न रहना ॥
आस्थान मैं सदासन, पर जब कि आविराजे ।
छत्रादिसब यथाचित, होलिये बिन तकाजे ॥ ५० ॥

मंत्री तथोपमन्त्री, सामन्त आदि सब ही ।
थे यथा स्थान बैंठे, थी जरा कमी न रही ॥
तब उन विदेशियों को झट ही गया बुलाया ।
उनने किया निरीक्षण, तो शीषधुन बताया ॥ ५१ ॥

चक्रीशने कहा तब, कहिये कि बात कैसी ।
अब और तब विभोहे, सरसों सुमेरु जैसी ॥
सज्जनों ठीक है अब है सुघड़ बदन मेरा ।
ननु नाथ ? यहाँ उलटा, है दिवस से अंधेरा ॥ ५२ ॥

भ्रम हो रहा यहाँ है, परदेशियों ! तुम्हें तो ।
ननुठीक कह रहे हम, हे नाथ आप चेतो ॥
हे प्रभो उस समय था, नीरोग देह सारा ।
अब बिगड़ वह रहा है, अन्दर अहो तुम्हारा ॥ ५३ ॥

अङ्कुरित हो चुके हैं, कुष्ठादिरोग इस में ।
सोलह बड़े भयङ्कर, सन्देह यहाँ न हमें ॥
थूकें कि आप अपनी, इस पीक पान की को ।
स्वर्ण की थालिका में, फिर देखिये उसी को ॥ ५४ ॥

कुछ देर ढका रखकर, तो आप ही कहेंगे ।
है ठीक बात मित्रों ?, यों सत्य को गहेंगे ॥
क्या देर थी वहाँ फिर, जब किया गया वैसा ।
बहु कीट दीख पाये, तब शोच हुवा ऐसा ॥ ५५ ॥

अभिमान रूप का था, मुझको कि मैं बका था ।
ये ठीक कह रहे थे, फिर भी न मैं थका था ॥
देख लो पलक भर में, वह धूल सब हुवा है ।
यह देह अहो प्यारे, व्याधियों का कुवाँ है ॥ ५६ ॥

धिक्कार रुप मद को, धिक्कार देहि पद को ।
फिर बार बार धिक् हो, इस राज्य भूति नद को ॥
जो समय पर दगा दे, ज्यों इन्द्र जाल वस्तु ।
इसमें न भूल पाये, स्यावास उन्हें अस्तु ॥ ५७ ॥

समझ रहा था मैं मेरा यह परिकर सारा ।
सचिव शूर सामन्त साहु सज्जन सुत दारा ॥
किन्तु यहाँ है कौन आज वह मेरा प्यारा ।
जो कि मुझे दे इस विपत्ति में जरा सहारा ॥ ५८ ॥

पर देशी भी आ पहुँचे ये बद कर सट्टा ।
सुना जब कि मुझ को था इनने हट्टा कट्टा ॥
किन्तु यहाँ हो गया जहां मुझ तनु में वट्टा ।
छूवेगा क्या कोई मेरा कहो दुपट्टा ॥ ५९ ॥

साथी सब ये हुये अहो खाण्ड की डली के ।
कष्ट सहूंगा मैं मेरी इस देह गली के ॥
दीख रही यह मुझे व्यर्थ की नाते दारी ।
मेरा कह है फँसा हुवा जिसमें संसारी ॥ ६० ॥

मुझे आ गई बात याद वह एक पुरानी ।
जो डंके की चोट कह रही है जिन वाणी ॥
था कोई भी सेठ और उसकी सेठाणी ।
महा रूप की खानि यथा, रति पतिकी राणी ॥ ६१ ॥

वह करता था प्रीति सेठ उस सेठाणी से ।
तन मन धन से सदा इन्द्रवत इन्द्राणी से ॥
थोड़े दिन के बाद रहा उसको कि गर्भ था ।
उसका वह निस्सार हो रहा देह सर्वथा ॥ ६२ ॥

कुटिल काल की चाल से यहां बेचारी के ।
हो पाया था कोढ़ मदन की फुलबारी के ॥
किया गया उपचार किन्तु पाई न सफलता ।
रुठ रहा हो दैव वहां क्या उपाय चलता ॥ ६३ ॥

अपने घर से दी निकाल उसको कि साहुने ।
उसके मुख शशि को छूहा था क्योंकि राहुने ॥
रहा नहीं था अत– कहीं अब उसे सहारा ।
क्योंकि दैव ने निर्दयता से रुप विगारा ॥ ६४ ॥

कौन इसे दे भीख भी कहां अब यह जावे ।
जो भी देखे इसे उसे ही घिन हो आवे ॥
बड़े कष्ट से इसने अपने दिवस बिताये ।
इसी बीच में इसके दो बच्चे हो पाये ॥ ६५ ॥

एक साथ सुत सुता उन्हें यह कैसे पाले ।
देखे निज तनु और या कि उनको सम्भाले ॥
अतः एक को इधर अन्य को उस पुर दर में ।
रख आई इस तरह चित्त था किया शवर में ॥ ६६ ॥

भिन्न भिन्न दो सेठ ले गये उन्हें उठाकर ।
पाला पोषा लाड चावसे था अपने घर ।।
उनको ऐसे वर्ष शोडषी ने अबगाहे ।
दैव योग से आपस में वे गयेविवाहे ।। ६७ ।।

एक रोज जब उनके घर थे श्री मुनि आये ।
दिव्य दृष्टि से उनने इनके हाल बताये ।।
हम हैं दोनों बहन और भाई मा जाये ।
हन्त हन्त ऐसे जाना तब थे घबराये ।। ६८ ।।

बिगड़ चुकी थी खीर किन्तु हो क्या पछताये ।
हां आगे के लिये दूर दोनों हो पाये ।।
इधर सुनो अब बात जो कि इन की माता थी ।
इन्हें डाल कर गई उसे आई साता थी ।। ६९ ।।

अपने आप देह उस का अब कञ्चन कासा ।
धीरे धीरे होलिया कि थी हुई दिलाशा ।।
देखो नर की जाति यहां स्वार्थ से भरी है ।
मेरे पति ने मुझे किस तरह से बिसरी है ।। ७० ।।

जब थी चङ्गी मैं कि लगा करती थी प्यारी ।
तिलक शील के लिये यथा केशर की क्यारी ।।
किन्तु जहाँ मेरे तन में आई बीमारी ।
वैसे ही मैं वगा दी गई जूठन दारी ।। ७१ ।।

अतः आज मैं उसका बदला ले बतलाऊं ।
उसी स्वार्थ धर मर्त्य जाति को ठग कर खाऊं ॥
इसी तरह की बुरी वासना थी जहां जगी ।
नित्य नये के तन धन वृष को लूटने लगी ॥ ७२ ॥

एक रोज धन देव जो कि इसका लड़का था ।
उसका भी मन काम वासनासे भडका था ॥
वह भी आया पाप कथा पूरी करने को ।
इसी कुई के नीर से पिपासा हरने को ॥ ७३ ॥

दोनों का मन एक हो लिया कर्म योग से ।
कटने लगी रात्रियां उनकी थी कुभोग से ॥
ताकि एक लड़का उनके फिर होपाया था ।
प्रीतिदत्त यह नाम उन्होंने ठहराया था ॥ ७४ ॥

धनदेव की सोदरी को तो था मिल पाया ।
सत्सङ्ग कि उसने साध्वीपन को अपनाया ॥
दीव्यबोध भी था हुआ अतः आई दौड़ी ।
वहां जहाँ उन दोनों की रहती थी जोड़ी ॥ ७५ ॥

उसने आकर दिया बोध उन को भी ऐसा ।
किसका किसके साथ हो रहा नाता कैसा ॥
इसी जन्म में इतर जन्म का क्या फिर कहना ।
कवि कहता है हन्तनहीं भोगों में बहना ॥ ७६ ॥

नरतनु पाकर भी भोगों में ही यदि खोया ।
तोड़ हार को सूत के लिये, वह नर रोया ।।
हां जिसने भी योग को यहाँ परअपनाया ।
दूरकिया भव रोग को, सुखी वह होपाया ।। ७७ ।।

यों विचार कर चक्र नाथने घर था छोड़ा ।
बन वैरागी साधुजनों से नाता जोड़ा ।।
किया घोर तप ताकि ऋद्धियां थी हो पाई ।
फिर भी तनु में रोग न उसकी चिन्ता आई ।। ७८ ।।

इसी बात की फिर प्रशंसा की सुरपति ने ।
किन्तु न माना उसे उन्ही देवो की मति ने ।।
आकर दोनों अतः टहलने लगे वहां थे ।
सनत्कुमार मुनीश विराजे हुये जहां थे ।। ७९ ।।

मुनि ने कहा कौन तुम कैसे घूर रहे हो ।
हम हैं भिषग् मुनीश रुग्ण हो आप रहे हो ।।
करते हैं निःशुल्क दवा हम सब रोगों की ।
नहीं हमारे पास कमी उन उन योगों की ।। ८० ।।

यह उनकी सुन बात मुनिप फिर बोले वाणी ।
जन्म मरण की व्याधि मुझे है बड़ी पुराणी ।।
नहीं हमारे पास नाथ ? उसका इलाज है ।
वह तो हम लोगों के भी लग रही आज है ।। ८१ ।।

शारीरिक रोगों की हम औषधि करते हैं ।
जिनसे संसारी मानव सब ही डरते है ॥
मुनि बोले है कौन बड़ी यह बात बताओ ।
जिस पर तुम अपने मन में यों घमण्ड लावो ॥ ८२ ॥

ये सब तो हैं यहां थूक से ही मिट जाते ।
इनसे ज्ञानी लोग नहीं कुछ भी घबराते ॥
यों कह अपना थूक लगाया निज अङ्गुल से ।
हुई स्वर्ण की भाँति वहाँ तब देव थे हँसे ॥ ८३ ॥

अहो धीरता महाबीरता बड़ी आपकी ।
हम लोगों की मति मुनीश ? है किन्तु पाप की ॥
किया आपका यशो गान था सुराधिपति ने ।
किन्तु नहीं माना था हम लोगों की मति ने ॥ ८४ ॥

किन्तु हुआ है हमें आज विश्वास बड़ा ही ।
सुराधीश है महाराज वह समुचित राही ॥
उसने जो था कहा नाथ ? मण मेंसे कण था ।
नहीं आपकी महिमा की हो वचन से कथा ॥ ८५ ॥

मुनि बोले फिर बात यहां क्या महिमा की है ।
क्यों कि भिन्न है देह भिन्न यह चेतन जी है ॥
है शरीर काकाम सहज में गलना सड़ना ।
पद्गल यह जड़ रुप सज्जनों ? किन्तु न जड़ ना (जीव) ॥ ८६ ॥

भूल है कि यह मान रहा इसको अभिन्न ही ।
अज्ञानी जन अहो मोह को छोड़ता नहीं ॥
इस दुनियां में एक दुःख की बात यही है ।
इसको वरना नहीं कष्ट का नाम कहीं है ॥ ८७ ॥

धोता इसको पोंछता तथा बार बार है ।
शोचे नहीं कि तूक्यों इतना कष्ट कार है ॥
तू है इसे लडाता यह फिर है इतराता ।
खाता पीता भी तो यह है गिरता जाता ॥ ८८ ॥

तू तो इसके सँभालने में ही है अन्धा ।
तेरे लिये न दूसरा रहा कोई धन्धा ॥
तू इसकी ही उधेड़ बुन में है लग पाया ।
खुद को तो हे आत्मन् तूने यहां भुलाया ॥ ८९ ॥

एक बार दश मित्र गये थे तीर्थ नहाने ।
जहाँ लग रहे थे कि लोग भी आने जाने ॥
एक साथ वे दशों मित्र जल में घुस पाये ।
डुबकी लेकर उसमें वे थे खूब नहाये ॥ ९० ॥

निकले तब था गिना कि नो हैं एक है कहां ।
आये तब थे दश रह पाये हन्त नो यहां ॥
यों सब ने था गिना सभी शोच में बहे थे ।
वहीं एक थे साधु जोकि सब देख रहे थे ॥ ९१ ॥

कहा उन्हों ने खुद को तो तुम हो भूल रहे ।
इसी लिये इतनी देरी तक कष्ट हैं सहे ॥
यही हाल संसारी का यह भूल आप को ।
पर के लिये किया करता है घोर पाप को ॥ ९२ ॥

❀ ❀ ❀

卐 कुण्डलिया 卐

सुना परम उपदेश को धन्य धन्य कहदेव ।
गये आपके स्थान पर रहे मुनि स्वयमेव ॥
रहे मुनि स्वयमेव लीन होकर अपने में ।
लगे हुये थे जो कि घोर तप के तपने में ॥
हृत्तन्त्री से कर्म तूल को खूब था धुना ।
पाया वह सुस्थान नाम जिसका कि शिवसुना ॥ ९२ ॥

❀ ❀ ❀

卐 आत्मतत्व सम्प्रत्यय 卐

हे मित्र बात विचित्र ऐसी क्या सुनाते हो मुझे ।
मालूम होता है कि कौतुक लगा है कोई तुझे ॥
क्या मैं कहाने योग्य कोई देह से पर चीज है ।
इस देह में निःश्वास केवल यही जीवन जीव हैं ॥ १॥

यदि देह से है भिन्न चेतन दीखता है क्यों नहीं ।
आता तथा जाता किसी को भी कदापि कहो कहीं ॥
यह जन्म से मरणान्त तक ही दीखता सब खेल है ।
पृथिवी जलदिक पञ्च भूतों का विलक्षण मेल है ॥ २ ॥

कारण सदृशही कार्य होता है विलक्षण तो नहीं ।
है पञ्च भूतों में न चेतनता किसी में भी कहीं ॥
फिर वर्णरस गन्धादिता भूताधिकारों की धरा ।
होती न वह है ज्ञान में तुम शोच कर देखो जरा ॥ ३॥

उसने कहा क्या मुनि न जीवित रहे प्राणायाम से ।
नि:श्वास का अवरोधकर जो धन्य हैं जिन नाम से ॥
है ज्ञान जिसका धर्म वह चेतन अनादि अनन्त है ।
इस देह में बस रहा जैसे नीड में कि शकुन्त है ॥ ४ ॥

है ज्ञान गुण ही नही सकता पञ्च भूतों का कभी ।
जिसका न उनके साथ में अन्वय तथा व्यतिरेक भी ॥
हम देखते हैं एक नर को कृश तथा ज्ञानी महा ।
फिर दूसरा है हृष्ट पुष्ट तथापि भोन्दू हो रहा ॥ ५॥

हो ज्ञान गुण यदि देह का तो एक मां के उदर से ।
पैदा हुये सुत भिन्न भिन्न विचार वालेक्यों लसे ॥
है जोड़लों में भी परस्पर भेद हमको दीखता ।
वह हुआ कैसे तथा क्यों यह भी मुझे तुम दो बता ॥ ६ ॥

अतएव है निश्चित कि जो जैसा कर्म कर आ रहा ।
अपने पुराभव में कि वह वैसा यहां पर पारहा ॥
है पथ्य भोजी किन्तु फिर भी उसे रोग सता रहा ।
दूसरा हन्त विरूद्ध भोजी' स्वस्थ दीख रहा अहा ॥ ७ ॥

एक को हैं बतला रहे फिर भी न कुछ है आ रहा ।
कोई इसारे मात्र में है विज्ञ होता जा रहा ॥
है एक बैठा खा रहा श्रमकर न पर है पा रहा ।
इत्यादि फल सब पूर्वकृत का दृष्टि पथहै हो रहा ॥ ८ ॥

जैसा किया वह पा रहे हैं और आगे के लिये ।
जैसा करेंगे वह भरेंगे समझ लो अपने लिये ॥
सन्तोष पूर्व सरल जीवन बिताने वालायहां ।
होगा अगाडी जन्म में भी अहो मानव वह वहाँ ॥ ९ ॥

अन्याय और अनर्थकर के लिये देखो नरक है ।
जा कर वहां स्वक्रूरतावश घोर संकट वह सहे ॥
बंचना चुगली आदिमाया चारकी बातें करे ।
वह मर्त्य मरकर नियम से है मित्रवर पशुनत धरे ॥ १० ॥

अन्धे मनुज को देखकर उपहास उसका यदि करे ।
सुन वाल उत्तर काल में वह अलोचनता को धरे ॥
बोली सुरीली अहो मेरी गर्व यह मन में धरें ।
जो कहे कुछ वृद्धादितो वव्वोकिता उनकी करें ॥ ११ ॥

निज वचन कौशल से इतर नर को सदा ठिगता फिरे ।
उस पाप से यह आप ही फिर मूकता द्वारा घिरे ॥
पूछे पथिक पन्था वहाँ उलटा बता देवे उसे ।
लूलू तथा लँगड़ा बने वह जीव ऐसे पाप से ॥ १२ ॥

जो सतत झूठे लेख लिख है दूसरों को ठिग रहा ।
वह बने टूटा बदन ऐसा जैन वाणी में कहा ॥
जो साधुवों की करे निन्दा देख उनके बदन को ।
कुष्ठादि आमय हैं सताते अहो ऐसे कुजन को ॥ १३ ॥

निज देह की ही सजावट में जो जुटा रहता यहां ।
वह हे महाशय समझ लो तुम भामिनी होगा वहाँ ॥
दुहितादिके भी साथ में व्यभिचार करना चाहता ।
वह हींजड़ेपन को धरातल पर अहो अबगाहता ॥ १४ ॥

जो दूसरे जन की जनी को बहन जननी तुल्य ही ।
देखे कदाशय चित्त में अपने न आने दे कहीं ॥
सहयोगिता में विपन्नो की जो स्वजीवन सार दे ।
है वह पुरुष होता यही तुम कह रही हो शारदे? ॥ १५ ॥

अपने लिये व्रत को कि जो है पूर्ण कर बतला रहा ।
प्रत्येक उत्तम कार्य में स्वविवेक को जतला रहा ॥
जिसका कि मानस दया के रससे भरा होवे अहा ।
वह यहां से हैस्वर्ग जाता यही जिनजी ने कहा ॥ १६ ॥

हां जो किसी व्रत शील में भी ढील बतलाता कहीं ।
जिसकी कि ऐहिक वासना निःशेष हो पाई नहीं ॥
तो असुर होकर सुरवरों की टहल करता है वही ।
अपनी कमी उसको वहीं पर भी सतावे क्यों नहीं ॥ १७ ॥

यह कैमरा है मनहमारा जो कि आत्म समीर में ।
ले वासना जिस वृत्तकी यह कह रहा हूं धीर ? मैं ॥
अतिविम्व वैसा वहा पर सम्पन्न करता आप है ।
साथी न कोई दूसरा, यदि है सुकृत या पाप है ॥ १८ ॥

जाता हुआ वह दीखता है नहीं यह तो ठीक है ।
फिर नही दीखे वह नहीं है यही बात अलीक है ॥
है हवा भी क्या दीखती जिसको सभी हैं मानते ।
इस भूमि मण्डल पर यतः हैं उसे छूकर जानते ॥ १९ ॥

प्राणेशको भी इसतरह से हैं सुजन अनुमानते ।
निज मानसिकसद्बोध से तो खूब ही पहिचानते ॥
जो जानने के योग्य जैसे उसे वैसे जानना ।
फिर विशेषज्ञों के वचन को भी यहां पर मानना ॥ २० ॥

भूतादि अपने पूर्व जन्मादिक बताते हैं सही ।
फिर भी हमारी घृष्टता हैं जो उसे सुनते नहीं ॥
संस्कार वशहोजीव यह नाना शरीरों को धरे ।
नर सुर तथा पशु नारकीय भवान्तरों में अवतरे ॥ २१ ॥

श्री विजयपुर का एक बाहुजवर महेश्वरदत्त था ।
थे वृद्ध माता पिता उसके तुम सुनों उसकी कथा ॥
घर के सभी मांसाशनादिक में कि सुख थे मानते .
है धर्म किसका नाम यह तो वे नहीं थे जानते ॥ २२ ॥

वह जुटा रहता गेह धन्धे में महेश्वर दत्त था ।
चौबीस घण्टों में दिवस के बैल कोलू का यथा ॥
माता पिता यद्यपि नहीं कुछ किया करते काम थे ।
थे किन्तु तृष्णा में फँसे करते नहीं विश्राम थे ॥ २३ ॥

अब कुछ दिनों के बाद बुढवा हो चला जब रुग्ण था ।
बहु वैद्य बुलवाये गये फिर मिट न पाई थी व्यथा ॥
बोला महेश करो उपाय कि पिता को आराम हो ।
मेरी सफल हो कामना फिर आपका भी नाम हो ॥ २४ ॥

कुछ भी लगे न करुं कसर मैं यहां पैसे के लिये ।
है की कमाई बाप ने फिर हाथ मुझको भी दिये ॥
तब कहा वैद्यों ने मरण के रोग की न उपाय है ।
यह एक दिन आती सभी को अटल एक बलाय है ॥ २५ ॥

बोला महेश किहे पिता जी क्या करुं बतलाइये ।
अब आप जावेंगे यहां से मुझे कुछ फरमाइये ॥
रोकर पिता बोला कि कोई भी नहीं सदुपाय है? ।
क्या आज तक के ही लिये मेरी यहां यह काय है ॥ २६ ॥

जो प्राण सेप्यारी अधिक थी मुझे वह लक्ष्मी यहां ।
है, हन्त केवल जा रहा हूँ अकेला ही मैं कहां ॥
मैंसमझताहूँ तात आदिक आपको कि मिलें वहां ।
मत कीजिये कुछ शोच बापू मैं करुंगा वह यहां ॥ २७ ॥

प्रति मास रासन आपकी विप्रादिकों द्वारा सदा ।
मैं भेजता ही रहूँगा होगी न कोई आपदा ॥
फिर आपके मनमें कि जो भी हो वही बतलाइये ।
मैं करुंगा पूरा उसेसंकोच कुछ मत लाइये ॥ २८ ॥

यह सुन जरठ बोला कि सुत ? बेसी खर्च करना नहीं ।
जिससे तुम्हें फिर लाडले खुद दुःख पाना हो कहीं ॥
कुल रीति के अनुसार पाडा एक बलि देना सही ।
बरसी दिवस पर और मुझको है अधिक कहना नहीं ॥ २९ ॥

घर बार की सम्भाल रखना वंशवर ? तुम गौर से ।
बस है यही कहना यहां पर तुझे मेरी ओर से ॥
यों बोल कर वह चल बसा आगे सुनों कि हुई दसा ।
कुछ ही दिनों के बाद बुढिया भी हुई वह यमवशा ॥ ३० ॥

मरते समय में वासना जिस की रही घर बार में ।
करती रही थी कुक्कुरों से सुरक्षा हर बार मैं ॥
वह एक था भैसा हुआ घर में कि दूजी जो मुई ।
गृह की बगल में कुक्कुरी के पेट से कुतिया हुई ॥ ३१ ॥

अब तो महेश्वरदत्त उसकी गाँगिलावनिता रही ।
घर में वहाँ परतीसरा मानव रहा कोई नहीं ॥
थी विषय लम्पट गाँगिला जिस का मनोहररुप था ।
अंकुश न कोई रहा, था जो श्वसुरया सासू तथा ॥ ३२ ॥

घर कार्यवश बाहर चला जाता महेश्वरदत्त भी ।
मौका उसे एकान्त का वह मिला करता था तभी ॥
दिल खोल करकेबात करती किसी अपने यार से
कटने लगे थे गाँगिला के दिवस ऐसे प्यार से ॥ ३३ ॥

शिरसे बहा कर पैर तक अपना पसीना गात का ।
लाता कमा कर था महेश न था पता दिन रात का ॥
उसकठिन पैसे को बहाती नीर जैसे गाँगिला ।
वह रोज गुलछर्रे उड़ाती क्योंकि अवसर था मिला ॥ ३४ ॥

अब एक दिन उस पापिनी केपाप का घट भर गया।
तब दैव भी था आप अपना बार उस पर कर गया ॥
आया अचानक महेश्वर देखा किवाड़ कि बन्द है ।
देखी दरार जहाँ किकोई ले रहा आनन्द है ॥ ३५ ॥

खोलो किवाड़ सुना कि तोता गाँगला का उड़ गया ।
बोली धनी की है लगा यह तीर उसके उर नया ॥
है दर्द मेरे पेट में लेटी अतः हूँ जाइये ।
कर कामकोई भी कि थोड़ी देर पीछे आइये ॥ ३६ ॥

इस तरह अपनी समझ से उस ने वहां थी ढाल ली ।
कटुवाक्य वाणों की अहो बौछार फिर भी क्या टली ॥
मैं जानता हूँ यहाँ धूर्ते ? जो कि तेरे दर्द है ।
दे शीघ्र खोल किवाड़ वरना नाम मेरा मर्द है ॥ ३७ ॥

रवि के उदय में खुला फाटक कमलिनी का समझ लो
था गन्धलोलुपभृङ्ग बैठा जहाँ अब आगे चलो ॥
दी मर्म की थी चोट उस के अतः वह था मर गया ।
मरते समय में किन्तु अपना भाव ऐसा करगया ॥ ३८ ॥

मुझ को मिला यह आज मेरे दोषकाही दण्ड है ।
मैंने किया इसकी युवति केसाथ हन्त अफण्ड है ॥
इस तरह निज निन्दा तथा उस भामिनी में वासना ।
थी अतः उस के गर्भ में आ गया वह समुदास ना (नर) ॥ ३९ ॥

न महेश ने निज भामिनी को नाम भी कुछ था लिया ।
निज मित्रआदिक के निकट भी न इसको थ स्फुट किया ।
वह सोचता इस में अवज्ञा आपकी ही था यतः ।
लकड़ी न अच्छी हो वहां पर दोष तरु का वस्तुतः ॥ ४० ॥

समझी वहाँ यों गाँगिला थी कुछ नहीं पति ने मुझे ।
है कहा हे मन शोचना भी चाहिए इस पर तुझे ॥
कितना दिलावर है अहो तू क्यों न इस परही रहे ।
झूलता झूले की तरह से हा इधर से उधर है ॥ ४१ ॥

इस तरह उनका प्रेम आपस में सतत बढ़ता गया ।
था हुआ सुत फिर तो महेश्वर को प्रमोदहुआ नया ॥
उसको खिलाने रमाने में चित्त दोनों का लगा ।
मालूम होता था उन्हें जो दिवस आया सो भगा ॥ ४२ ॥

आया पिता के श्राद्ध का दिन तो महेश्वर ने कहा ।
क्यों भटकना हो कहीं फिर भैंसा यहां घर में रहा ॥
खुद हाथ से मारा उसे खुद ने पकाया मांस था ।
खुद ने बुला कर मेहमानों को जिमाया था तथा ॥ ४३ ॥

कुछ खाद्य पाने के लिए आई वहीं कुतिया जहां ।
घर में घुसी कि महेश ने उस पर जमाया लट्ठ हां ॥
बाहर निकल कर महिष की उन हड्डियों पर आडटी ।
वह कुक्करी जिस बराकी की टूट पाई थी कटी ॥ ४४ ॥

यों श्राद्ध होने के अनन्तर गोद में ले बाल को ।
आया महेश जहां कि बाहर सुनो आगे हाल को ॥
श्रीमुनि ज्ञानी वहां पहुँचे धुना उन ने शीष था ।
बोला महेश कि हे मुने है हुई ऐसी क्या कथा ॥ ४५ ॥

हे वत्स मैं क्या कहूँ–है उस मोह की लीला यहां ।
है कौन सी वह हे मुने फिर बताते हैं क्यों न हां ॥
है जानने की बात केवल किन्तु गाने की नहीं ।
फिर भी अगर तुम पूछते ही वत्स ? कहता हूं वही ॥ ४६ ॥

कहिये महोदय ? आप कुछ संकोच फिर करिये नहीं ।
है आप के इस भक्त की विस्फुर्तिदेवी सुन रही ॥
जिसका किया है श्राद्ध तुम ने उसे ही मारा अहा ।
यह महिष ही था पिता तेरा यों महामुनि ने कहा ॥ ४७ ॥

जिसकी कि गर्दन पर छुरी धर कर कमाया पाप था ।
फिर कर गये चट जिसे तुम वह ही तुम्हारा बाप था ॥
यह सुन चकित हो भुजज बोला अहो क्या यह ठीक है ।
मुनि ने कहा मैं कह रहा हूँ ज्ञान से न अलीक है ॥ ४८ ॥

केवल यही सुन कर अहो तुम पड़ रहे आश्चर्य में ।
हूं और भी तुमको सुनाता सुनों हे नर वर्य मैं ॥
देखो तुम्हारी मां यहीं तो है बिचारी कुक्कुरी ।
जिसकी कमर में हन्त तुमने चोट मारी अति बुरी ॥ ४९॥

माया तथा अति लोभ से मर कर हुई वह यह यहां ।
जिसकी कि सेवा आज तुमने लट्ठ से की नृवर ? हां ॥
इस बात से लज्जित महेश्वर ने झुकाया शीश था ।
मुनि ने कहा थोड़ी यहां पर और भी सुनलो कथा ॥ ५० ॥

जिसने तुम्हारी गेहिनी को स्नेहिनी कर था लिया ।
कह शत्रु जिसका अन्त तुमने हन्त खुद ही था किया ॥
वह जार ही है प्यार का अवतार तेरी गोद में ।
सुत रुप से जिसको कि तुम हो ले रहे भर मोद में ॥ ५१ ॥

फिर भी तुम्हारे चित्त में यह बात यदि जमती न हो ।
कुतिया करेगी स्पष्ट उसको तुम जरा इससे कहो ॥
जाति स्मरण इसको हुआ है बात यहसुनकर अहो ।
जिसका भला जैसे कि होना है वह कहो क्यों न हो ॥ ५२ ॥

बोला महेश कि जननि ? मेरे दोष पर मन मत धरो ।
अज्ञान वश हो किया मैंने जो कि उसको परिहरो ॥
ऐसा करो अब तो कि मेरे चित्त का संशय हटे ।
यह फिर अगाड़ी के लिये तो नाम जिनजी का रटे ॥ ५३ ॥

कुतिया गई घर में मही को खुरचने पग से लगी ।
खोदा महेश्वर ने कि उसके भाग्य की रेखा जगी ॥
वह जगमगाता हुआ रत्नों का खजाना खुल पड़ा ।
जिसको कि देख महेश का मानस हुआ था खुश बड़ा ॥ ५४ ॥

अब तो वहां उस मुग्ध का बह गया मोह विलीन हो ।
जब हो दिनाधिप का उदय तो अन्धकार कहीं न हो ॥
वह गिड़गिड़ा कर गिर पड़ा मुनिराज के था चरण में ।
भो त्राहि त्राहि मुने महाशय आपकी हूं शरण मैं ॥ ५५ ॥

मुझको हुआ विज्ञात यह संसार सकल विचित्र है ।
जो शत्रु था कुछ समय पहले वही होता मित्र है ॥
फिर मित्र से वह शत्रु हो जावे जरा सी देर में ।
हो स्वार्थ मे बट्टा जहां इसमें नहीं बुधजन रमे ॥ ५६ ॥

देखो कि मेरे पिता माता जो मुझे थे प्रिय अति ।
की स्वार्थ वश मैंने उन्हीं की अहो कैसी दुर्गति ॥
इस महा पातक से अहो कैसे कहो उद्धार हो ।
मैं बहा जाता हूँ उदधि में झगिति मेरा कर गहो ॥ ५७ ॥

मैं पतित हूं यद्यपि यते ? फिर पतित पावन आप हो ।
कर दीजिये वहकृपा जिससे दूर मेरा पाप हो ॥
मुझ भटकतेके लिये श्रीवर आप ही तो नाथ हो ।
इस घोर भव बन में अहो क्या और कोई साथ हो ॥ ५८ ॥

मुनि ने कहा तुमने किया था पाप पादप जो खड़ा ।
यद्यपि महेश्वर भूमितल पर वह भयङ्कर था बड़ा ॥
जड़भाव उसका किन्तु नरवर ? अधिक दूर नहीं चला ।
अनुताप रुप कुदाल ने उसको कर दिया खोखला ॥ ५९ ॥

हां नाम भी निःशेष उसका तुम अगर हो चाहते ।
तब रागरुप न नीर होना चाहिये उत्तम मते ? ॥
प्रत्युत वहाँ हो त्याग रुप समीर ही उसके लिय ।
जिससे कि खंखर हो रहे वह समझलो अपने हिये ॥ ६० ॥

यानी कि धन जन से रहित हो साम्यमय निज मनकरे ।
इस देह से भी नेह तजकर निर्विकल्प दशा धरे ॥
श्री सच्चिदानन्द स्वरुपी सोऽहमैसी स्मृति करे ।
वह पापमल से रहित होकर मुक्ति रमणी को बरे ॥ ६१ ॥

गुरु आज्ञा को शिरो धार्य कर उसने ऐसे ।
छोड़ दिया घर बार कांचली को अहि जैसे ।।
एकाकी हो चिदानन्द का ध्यान लगाया ।
अन्त समय में महेश ने कि अमर पदपाया ।। ६२ ।।

इसी तरह के वृत्त यहां निश दिन होते हैं ।
जिनमें फँसे हुये अज्ञानी जन रोते हैं ।।
महेश को गुरु योग मिल गया ताकि तर गया ।
पहले भूला किन्तु पुनः कल्याण कर गया ।। ५३ ।।

अधिकलोग तो इसी कींच में फँस मरते हैं ।
नहीं अन्त तक भी भगवान भजन करते हैं ।।
करते हैं जो घर परिकर में मेरा मेरा ।
शोचते–न पक्षियों का कि यह रैन बसेरा ।। ६४ ।।

जहां हुआ वह मरण नाम का अहो सवेरा ।
उठ दौड़ेगा जहां दैव ने दाना गेरा ।
एकाकी फिर यहाँ मिलेगा क्या वह हेरा ।
अहो कौन तब रहा यहाँ पर तेरा मेरा ।। ६५ ।।

卐 आत्म तत्व की स्वीकृति 卐

श्री वीर सम्प्रति सुना उपदेश तेरा ।
है हो गया वहयहाँ भ्रम दूर मेरा ॥
जो था कि भिन्न तनु से असुभृत् नहीं है ।
थी क्यों कि आज उसको अपना रही है ॥ १ ॥

होवे जहाँ कि तनु जीर्ण कुटीर जैसा ।
दे छोड़ जीव इसको फिर नेह कैसा ॥
है पुष्ट किन्तु यह देह सुमित्र ? मेरा ।
सौन्दर्य का सुजन लोवन मान्य डेरा ॥ २॥

चिन्ता करुं फिर कहो किस बात की मैं ।
खाता सदा सरस भात अहो दही में ॥
बोला वयस्य, शिशु वृद्ध युवापने का ।
है धर्मराज रखता न कदापि ठेका ॥ ३ ॥

बैठा पितामह पितारहता जहाँ है ।
नाती तथा तनय भी मरता वहाँ है ॥
रोगी जिसे कि हम जान रहे मरेगा ।
नीरोग होकर विहार यहाँ करेगा ॥ ४ ॥

थोड़े दिनों तक यही यम की अतिज्ञा ।
होती वहां यह वृहज्जन की अभिज्ञा ॥

हैं सोचते हम कि है यह पुष्ट बाहु ।
पर्याप्त देर तक युद्ध करे सुसाहु ॥ ५ ॥

आवे जहां कि यम तो क्षण में पछाड़े ।
ज्यों केशरी हिरण के दिल को उखाड़े ॥
सौमित्रि जो कि दशकन्धर का विजेता ।
हा मात्र बोल कर लुप्त हुआ सुचेताः ॥ ६ ॥

है सोचता नर कि में न अभी मरुंगा ।
उल्लेखनीय बहु कार्य यहां करुंगा ॥
हां किन्तु काल वृक आकर है दबाता ।
ऐसा अजातनय को, कर है न पाता ॥ ७ ॥

था सेठ कानपुर में बहु वित्त वाला ।
बोला जिसे किकरते सब लोग लाला ।
स्त्री थी जिसे अतुल रुपवतीसुरुपा ।
बिम्बाधरी स्मरपरी धन नाभि कूपा ॥ ८ ॥

था कारबार चलता बहु थी दुकानें ।
था कौन दूर तक जो उसको न जाने ॥
थे तो अनेक नर नोकर चाकरादि ।
थी खूब ही चल रही जिसकी कि गादी ॥ ९ ॥

थे ठाठ और सब ही जिस के कि नीके ।
थी एक बात न, यतः पकवान फीके ॥

सन्तान एक न अहो घर में हुई थी ।
आशा समस्त उसकी इस से मुई थी ।। १० ।।

हां यन्त्र मन्त्र फिर तन्त्र किये कराये ।
कोई न एक उन में कुछ काम आये ।।
थे वैद्य लोग सब ही कर यत्न हारे ।
हो दैव ठीक न जहां न वहां दवा रे ।। ११ ।।

यों हो चली उमर वर्ष पचास की थी ।
श्रीमान की युवति ने कम पांचली थी ।।
तो भव्य भाग वश गर्भवती हुई थी ।
मानों कि नीरधन शीरवती कुई थी ।। १२ ।।

प्यासे उसी धनिक को वह दीख पाई ।
भाग्येशने हृदय में खुशियां मनाई ।।
मोदानुमोद रस में नव मास बीते ।
नो रोज तुल्य, न रहे अघ के पलीते ।। १३ ।।

आया वही सुदिन था तबपुत्र पाया ।
अत्यन्त हर्षित हुये जन और जाया ।।
आशेश नाम जिसको सबने दिया था ।
राकेश तुल्य परिणाम जहां लिया था ।। १४ ।।

आई जहां कि तिथि शोडष वर्ष की थी ।
पूर्णेन्दु तुल्य तनु में तब दीप्ति ली थी ।।

थी पूर्णिमा सदृश कान्ति मती कुमारी ।
के साथ में युति हुई सुख वृद्धि कारी ॥ १५ ॥

किन्तु प्रभामय शरीर जहां कि देखा ।
याम्येश की यह हुई तब चित्त लेखा ॥
है कौन जो रख सके इस भामिनी को ।
मेरे सिवा अतुल रुप सुधा धुनी को ॥ १६ ॥

आशेश को फिर हुई रसकी भरी से ।
शादी किसी स्मरसुधाम्बुधि की तरी से ॥
दो चार मास रह ही वह भी गई थी ।
पूर्वोक्त भीरु पथको, न यहां रही थी ॥ १७ ॥

हां तीसरी फिर हुई उसकी कि शादी ।
जो थी स्वरुप गुण से कुसुमेषु गादी ॥
था एक पौत्र उपजा अब साहु जी के ।
बाजे बजे सदन में सहसा खुशी के ॥ १८ ॥

था दान भी तब दिया बहु याचकों को ।
एवं निमन्त्रित किया ग्रह वाचकों को ॥
कोई कहे सुत रहे जग में चिरायुः ।
कोई कहे कि न लगे इसको कुवायु ॥ १९ ॥

ऐसे अनेक शुभ संशन हो रहे थे ।
आ एक ने वचन दुर्धर यों कहे थे ॥

आया जहां अतिथि हा अब जा रहा है ।
देखो विभोकि यह तो अकुला रहा है ॥ २० ॥

आई जहां श्रवण में कटु बात ऐसी ।
पीयूष सम्वहन में विष भार जैसी ॥
सम्भालने भवन भीतर को भगा था ।
आशेश का शिर कि चोखट के लगा था ॥ २१ ॥

आघात से जब वहां वह चोट आई ।
थी बात में तनु हुई उसकी पराई ॥
था जो गया तनय को रखने रहा क्या ।
हा आप भी, पलक में यह हो रहा क्या ॥ २२ ॥

यों पुत्र और पति भी जब थे पलाये ।
थे सूतिने हृदय में अति दुःख पाये ।
थी खोजने वह गई उनको यथाऽहो ।
ऐसा हुआ झटिति नाटक पुष्ट वाहो ? ॥ २३ ॥

बुड्ढी यहां अब रही बुढ़िया तथा थी ।
कोई रहा इतर था उनका न साथी ।
ऐसी विचित्र घटना घटती सदा है ॥
संसार में न रहती स्थिर सम्पदा है ॥ २४ ॥

लूं चून बेच बकरी वह खूब ब्यावे ।
दे दूध ढेर जिससे फिर वित्त आवे ।

लूं भैंस ताकि उसके फिर एक पाडी ।
हो बेच भैंस परणू झट मैं कि लाडी ।। २५ ।।

यों शोच में लग रहा नर सेखचिल्ली ।
आटा खिंडा कर गई झट दौड़ बिल्ली ।।
जो भीख मांग कर था उसने बटोरा ।
फूटी घड़ी अब रहा वह आप कोरा ।। २६ ।।

होगी व्यतीत रजनी फिर पो फटेगी ।
श्री सूर्य से कमल की कलियां छटेंगी ।।
ऐसा विचार कर ही अलि जो रहा था ।
सुण्डाल ने कमल के कुल को गहा था ।। २७ ।।

ऐसा करुं वह करुं नर शोचता है ।
आ काल किन्तु इसको कि दबोचता है ।।
है हाय हाय कर मूढ महेन्द्र रोता ।
शोचा हुआ न इसका कुछ किन्तु होता ।। २८ ।।

होता तथापि इसके कि घमण्ड ऐसा ।
मैं जो करुं कर सकूं वह हो न कैसा ।।
है बात याद मुझको वह एक आई ।
श्री कृष्ण के चरित में जिनने बताई ।। २९ ।।

थी हो चुकी सकल भूपर राज्य सत्ता ।
बे रोट टोक अपनी प्रगटी महत्ता ।।

धर्मोपदेश सुनने सुजनोपकारी ।
श्री नेमि के निकट में पहुँचे मुरारि ॥ ३० ॥

आदेश जो कुछ हुआ शिर से लगाया ।
उत्साह खूब अपने मन में बताया ।
बोले मुरारि फिर कौतुक एक आया ।
मेरी कहाँ तक रहे अब और माया ॥ ३१ ॥

श्री नेमि ने तब कहा यह ठाठ बारा ।
सम्वत्सरावधि हरे ? सुनलो कि सारा ॥
द्वीपायनाख्य नर के कर से तुम्हारी ।
हो भस्म किन्तु फिर तो नगरी विचारी ॥ ३२ ॥

ये मद्य पीकर बने कुछ लोग बोके ।
पीटें उसे फिर वहां वह रुष्ट होके ॥
ऐसा करे कि न रहे यह कृष्ण डेरा ।
तू और सोदर बचे यह एक तेरा ॥ ३३ ॥

भो भूपते ? शर जरत्सु कुमार के से ।
तेरा शरीर यह कोमल कुम्भ जैसे ॥
होगा प्रणष्ट अतिकष्ट करी कथा है ।
हा किन्तु कौन पलटे यदि दैव चाहे ॥ ३४ ॥

श्री कृष्ण को भय हुआ तब मर्मभेदी ।
क्या हैं अहो कह रहे जग देक वेदी ॥

ये लोग जो कि मद नाम कभी न पीते ।
हैं किन्तु मूलगुण धार सदैव जीते ॥ ३५ ॥

होगा अहो फिर कहो यह कार्य कैसे
क्या सर्पराज निपजे मृदु फूल में से ॥
हो भी न फल्गु इनकी जग में सुभाषा ।
तो क्या निराश बन बैठ रहूँ मरासा ॥ ३६ ॥

कैसा करुं न मिलता कुछ मार्ग ही है ।
कि कार्यता हृदय को कि सता रही है ॥
आया विचार मन में फिर एक ऐसा ।
पाया महोदनिधि में मृदुयान जैसा ॥ ३७ ॥

की घोषणा नगर में मदिरोपयोगी ।
या चीज भी तदनुकूल कहीं कि होगी ॥
सर्वस्व संहरण दण्ड उसे मिलेगा ।
राकेश से न जड़जात कभी खिलेगा ॥ ३८ ॥

द्वीपायन प्रकृति भी कि बनूं न पापी ।
द्वारावती दहन का जग मे कदापि ॥
ऐसी हुई वह न ताकि वहां रहा था ।
योगीश हो बहुत दूर चला गया था ॥ ३९ ॥

यों होरही स्थिति यथोचित थी , प्रजा भी ।
थी शोचती कि अब तो न रही तथा भी ॥

हा किन्तु काल गति है अनिवार्यताति ।
जो चाहती वह वहां कर ही बताती ॥ ४० ॥

दिग्भ्रान्त हो समय में वह आ गया था ।
जो देश छोड़ परदेश अहो गया था ।
आ द्वारिका निकट था ठहरा कि ऐसा ।
हो ही लिया श्रवण मे गर पूर जैसा ॥ ४१ ॥
थे घूमने कि निकले यदु लोग थोड़े ।
देखा इसे झट वहां हननार्थ दोड़े ॥
पी प्यास के वश कुवासित कुण्ड पानी ।
थी हो चली मति अहो जिनकी विरानी ॥ ४२ ॥

卐 कुसुमलता छन्द 卐

मुनिकी कोपाग्नि में भस्म हो चली अतः नगरी सारी ।
एकलता की भांति नाम को भी न रही वह थी दारी ॥
जिसे समझते थे कि हजारों वर्ष न कुछ भी बिगड़ेगा ।
कौन जानता था कि पकी खेती पर हिमवर्ष पड़ेगा ॥ ४३ ॥

अहो दिवस ने ही अन्धेरा कर देख ेबतलाया था ।
गरल अमृत ने गरुड़राज ने अहि का रुप दिखाया था ।
प्रलयकाल से भी वेसी वह दृश्य वहाँ हो आया था ।
जिसने खुद मुनि के शरीर तक को भी क्यान मिटाया था ॥ ४४ ॥

किन्तु न जाने क्यों हरिबल इन दोनों को न सताया था ।
रहा न कुछ भी और वहां सब भस्म शेष हो पाया था ॥
उन दोनों ने तब यों शोचा चलें अहो अन्यत्र कहीं ।
नहीं देखने को भी कोई चीज यहां है क्योंकि रही ॥ ४५ ॥

चलते चलते कौशाम्बी के निकट जहाँ कि पहुँच पाये ।
तरु माला को देख वहां पर यों विचार मन में आये ॥
क्या ही च्छटा प्रकृति की देखो कैसी सरसा छायाहै ।
यहाँ निराली ही अपनी यह वसुन्धरा की माया है ॥ ४६ ॥

थोड़ी देर यहीं ठहरें फिर आगे तो चलना ही है ।
क्या है स्थान नियत उसका जो हो रहा कि गुमराही है ॥
बैठे ठण्डी छाया में तब फिर केशव था यों बोला ।
यथा दैव ने सुयोग रस में वियोग का विष हो घोला ॥ ४७ ॥

भैया मुझको प्यास लगी है जिससे दम घुटने को है ।
पलभर भी तो रह न सकेगा अगर न जल जुटने को है ॥
लगा ढूंढने जल बलदेव कि चक्र पाणि थालेट रहा ।
जरत्कुमार पहुंच पाया था फिरता घुरता क्या न वहां ॥ ४८ ॥

देखा है कोई मृग, मारा तान कि तीर लगा पग में ।
जो था भूतल का भूषण वह रहा नहीं अब इस जग में ॥
कुपित पूतनाने भी जिसका कुछ भी नहीं बिगाड़ किया ।
जरासन्ध के दृढ बाणों का जिसने था उपहार लिया ॥ ४९ ॥

प्रलय काल की सी ज्वाला से बाल बाल बच पाया था ।
चाणूरादि मल्ल लोगों से जो न जरा घबराया था ॥
आज उसी का समय कौन से मिष से देखो आया था ।
हन्त हन्त उसके पग में वह कांटा ही लग पाया था ॥ ५० ॥

ऐसे महा मानवों की भी सहसा जब यह हुई गति ।
तो फिर मेरे तेरे जैसे लोगों की है क्या गिनती ॥
अतः जिसे हो करना उसको क्यों फिर कल पर भी छोड़े ।
विज्ञ, न जाने काल कहां कब आकर इसका शिर तोड़े ॥ ५१ ॥

卐 कुण्डलियां छन्द 卐

समझाया मुझको अहो उसने बारंबार ।
फिर भी मैने था वहां रञ्च न किया विचार ॥
रञ्च न किया विचार आत्म हित के करने का ।
शोच रहा था है न समय अब ही डरने का ॥
चला गया वह हो निराश फिर कभी न आया ।
क्योंकि न मुझसा मूर्ख हन्त समझा समझाया ॥ ५२ ॥

卐 सफल परीक्षा 卐

श्रीजिन रोग जरादि विजेता मैं उनका ही ध्यान धरुं ।
आगे और हुआ क्या हे नृप तेरे आगे स्पष्ट करुं ॥
इधर गया वह मित्र इधर में मेरे हुई वेदना थी ।
अङ्ग अङ्ग में जिसे बटाने को न हुआ कोई साथी ॥ १ ॥

यद्यपि आये वैद्य बहुतसे कोई सफल न हो पाया ।
प्रत्युत बढ़ती रही व्यथा ज्यों अपर दिवस की हो छाया ॥
बिना नीर के मत्स्य की तरह तड़फने लगा मैं तब था ।
हुई बेकली बहुत मुझे तो चैन न पलभर को अब था ॥ २॥

सभी आ जमें घर कुटुम्ब के कानां फूंसी करते थे ।
अब दम निकला वह टूट रहा यों मन ही मन डरते थे ॥
बड़ी देर होचली कि ऐसी कायरता मन में आई ।
इस जीवन से तो मरना ही मेरा अच्छा है साई ॥ ३ ॥

कोई परदेशी इतने में आया उसने वहां कहा ।
मैं भी देखूं जरा कि इसके है कैसा हो रोग रहा ॥
दया शारदा की मुझ पर है ताकि जिसे भी छूता हूं ।
स्वस्थपलक में हो रहता है अतः इसे छूना चाहूं ॥ ४ ॥

आत्मश्लाघा है यद्यपि यह परन्तु परिचय दे पाऊं ।
और किस तरहसे है सुजनों, क्यों कि विदेशी कहलाऊं ॥

कहा पिता ने आइये प्रभो कृपा कीजिये यहां जरा ।
पारिश्रमिक आप मुँह माँगा मुझसे फिर लीजिये खरा ॥ ५ ॥

वह बोला विद्योपजीविका है भूतल पर बहुत बुरी ।
जनता के हित के लिये अहो मानों वह हो तेज छुरी ॥
करता हूँ निःस्वार्थ भाव से सेवा पीडित लोगों की ।
सही नहीं जाती है मुझसे स्थिति रोगी के रोगों की ॥ ६ ॥

यों मेरा ले हाथ हाथ मे बोला है कुछरोग नहीं ।
इसके केवल हो पाया है अहो प्रेत का योग कहीं ॥
उसको भी तो दूर हटाने का प्रयोग कुछहै कि नहीं ।
इस प्रश्न पर है अवश्य फिर, यों अटकी सी बात कहीं ॥ ७ ॥

अटक रहे क्यो, उसे करो फिर इसमें बातकौनसी है ।
है यह बात कितुम लोगों में ऐसा कौन समरसी है ॥
जो इसके बदले में अपने आप को कि अर्पण कर दे ।
होकर यह निरोग, ताकि तुम सब का झटसंकट हर दे ॥ ८ ॥

क्षण भर.को सन्नाटा होकर उस पर यह था शब्द मिला ।
कोई बात नहीं भिषक्प्रवर ? इसे दीजिये आप जिला ।
फिर जिसको भी आप कहेंगे वही कर सकेगा ऐसा ।
कौन नटेगा क्यों कि हमारा प्यारा यह चन्दा जैसा ॥ ९ ॥

वैद्य ने कहा शोच समझलो और अभी तो तुम इसको ।
कहीं न ऐसा हो कि हलाहल कर दिखलावो फिर विष को ॥

हां हां ठीक कह रहे हैं हम सब मिलकर तो कहतेहैं ।
देर नहीं कीजिये भिग्वर आप यहा क्यों बहते हैं ॥ १० ॥

क्यों कि उन्होंने शोचा था यह गप्य यहाँ पर केवल है ।
या तो है अजानपन इसमे अथवा कोई भी छल है ।
कौन किसी के बदले में कोई को लेता देता है ॥
अपने किये कुकर्मो का फल आप देहधर लेता है ॥ ११ ॥

अगर कहीं कुछ किया और मिट गयाकष्ट तो मिटा सही ।
वरना इस परदेशी की भी बात यहाँ हो प्रगट रही ॥
यही समझकर उन लोगों ने वहां बहुत था जोर दिया ।
अपनी युक्ति उसे करने को बार बार था वाध्य किया ॥ १२ ॥

मन्त्र बोल कर वैद्य ने कि तब मुझे उढाई चादर थी ।
मेरी पीड़ा मिटी परन्तु पसीने में चादर तर थी ।
उसे निचोड़ एक भाजन में बोला वैद्य कि लो इसको ।
पीलो इससुन्दर के बदले रोगी होना हो जिसको ॥ १३ ॥

था क्या फिर तो एक दूसरे को वे कहने लगे वहां ।
बापू बोला मैं खुद पीलूं किन्तु कौन है कहो यहां ॥
जो दुकान काकाम काज सब ठीक तरह से चला सके ।
माँ बोली मेरे बिना अहो धर का सारा काम थके ॥ १४ ॥

भ्रातावों को वहाँ भ्रातृ जायावों ने था मना किया ।
बहनों को बहनेऊ लोगों ने था पीने नहीं दिया ॥

अर्द्धाङ्गिनी कहाने वाली भी बोली इस बालक को ।
कौन पिलावे पय ऐसे निज जीवन था प्यारा सबको ॥ १५ ॥

होकर वाध्य वैद्य ने मुझ पर ही वह पानी का प्याला ।
दिया उढेल हुआ वह जैसा ज्वाला में हो घी डाला ॥
मुझको पहले से भु दुगुणी पीड़ा होने लगी जहाँ ।
वैद्य जहां से आया था विलखा होकर वह गया वहां ॥ १६ ॥

देख दृश्य यह मुझे आ गया याद मित्र का कहना था ।
स्वार्थ भरा संसार अहो यह ठनक रहा तब यों माथा ।
है दुनियाँ में कौन किसी का जैसा मैं कि समझता था ।
कदलीदल जैसे असार यह सच्ची ऋषियों की गाथा ॥ १७ ॥

अहो कांच के वर्तन को कंचन का मैंने था माना ।
चोरों को ही साहूकार रुप से मैंने था जाना ॥
विष को ही पीयूष समझ कर रुचि से मैं शठ पीता था ।
हन्त हन्त मेरा मानस यह विचार रस से रीता था ॥ १८ ॥

अबतो मैं हूँ समझ रहा यह शरीर रोगों का घर है ।
सुन्दर सुडोल कह कर जिस पर रीझ रहा भोगी नर है ॥
भोग भुजंग समान भयङ्कर इसको डसने वाले हैं ।
बन्धु सपेरे जैसे, होते वे जिनके कि हवाले हैं ॥ १९ ॥

अङ्कुश हीन मत्त हस्ती मन चञ्चल इन्द्रिय घोड़े हैं ।
दौड़ रहे इसके भूतल पर बेलगाम बेकोड़े हैं ॥

जिधर किधर भी सरस घास देखी कि उधर ही दौड़ पड़े।
आया गर्त उसी में इस चेतन को पटका जहां अड़े ॥ २० ॥

अब विचार यह आया है मैंस्वस्थ कहीं यदि हो जाऊं।
तपरुपी अङ्कुश संयममय कोडा लेकर दिखलाऊं ॥
अब तो इनको उत्पथ में मैं जाने दूंगा नहीं यहां।
सावधान हो रहूँ सदा के लिये कि पाऊं समसुख हाँ ॥ २१ ॥

ऐसा मन होते ही मेरी व्यथा शान्त हो पाई थी।
बहुत समय से श्रान्त चित्त था अतः नीन्द सी आई थी ॥
सुपने में कोई आ बोला सुनों हृदय कर सीधा सा।
हम दोनों थे स्वर्ग में जहां लौकिक सुख की मृदुभाषा ॥ २२ ॥

तुम हो लिये मनुष्य और मैं देव यहां पर आया हूँ।
मित्र और वैद्य के रुप में पहले भी आ पाया हूं ॥
क्योंकि कहा था तुमने मैं भोगों में वहां न फँस जाऊं।
करना मुझे सचेत ताकि मैं अपना हित झट करपाऊं ॥ २३ ॥

भूल गये सब बात किन्तु तुम भोगों में ही उलझ रहे।
अब तो ऐसा करो ताकि वह उलझा भी सब सुलझ रहे ॥
देह कष्ट की बातकौन फिर आत्म कष्ट भी दूर हटे।
जन्म मरण की विपुल वेदना वहभी बातों में विघटे ॥ २४ ॥

तुमने ही खुद देख लिया न कि दुनियां सब मतलब की है।
संकट में तेरी सहायता कहो किसी ने क्या की है ॥

मेरा मेरा कहकर जिसके पीछे तू कि लग रहा था ।
एक नहीं मानी मेरी मैं कहकर किन्तु थक रहा था ॥ २५ ॥

अस्तु समय को व्यर्थ न खोना अब पक्का निश्चय कर लो ।
आगे को न भूलना, तपकर भूल हुई को भी हर लो ॥
इतने में नींद खुली मेरी मैंने दृढ संकल्प लिया ।
स्वास्थ्य ठीक होते ही लूंगा संयम ऐसा चित्त किया ॥ २६ ॥

कम कम होने लगी वेदना यथा अमृत हो सींच दिया ।
स्वस्थ होलिया स्वल्प देर में जादू का सा काम किया ॥
मुझे आ गई नींद वहां फिर अच्छी तरह सो रहा था ।
जग कर देखा प्रभो मधुर सा प्रातःकाल हो रहा था ॥ २७ ॥

मिटा अन्धेरा भूतल का भी मेरा जहां मिट रहा था ।
मुझे प्रकाश मिला जैसा धरणी पर सूर्य उग रहा था ॥
मेरा मन अब कमल की तरह खिलकर खुशबूदार बना ।
पाप मधुप था रो रहा जहां रुदन पुराना वह अपना ॥ २८ ॥

उठकर देखा मैने पूरा परिकर वहां जम रहा था ।
वह लम्बा चौड़ा कमरा भी जिसके लिये कम रहा था ॥
सब बैठे थे मौन लिये उनने देखा जब मुझे जगा ।
सूर्योदय हु हुआ कमल के लिये उन्हें था वहां लगा ॥ २९ ॥

वे सब मुझ से पूछने लगे कहो हाल अब कैसा है ।
मैने कहा नरक बाले को मिले स्वर्ग सुख जैसा है ॥

यह सुनकर खुश हुये और वे कहने लगे परस्पर में।
बोला एक कि मेरे बाला जी की सुदया फली हमें ॥ ३० ॥

अन्य ने कहा मेरी दुर्गा को मैंने जब याद किया।
देख रहा था मैं कि तभी इसने झटपट आराम लिया॥
मैने कहा कि अपने अपने दिल के उत्तरदायी हो।
सम्भव है मान्यता आपकी काम आपको आई हो ॥ ३१ ॥

मेरी मनोभावना ने ही मेरा तो यह काम किया।
खावे कोई पेट भरे कोई का माने नहीं जिया॥
जो जैसा करता है वैसा दुःख तथा सुख भरता है।
मिश्री खाने से मुँह मीठा, गर से तो नर मरता है ॥ ३२ ॥

अगर किसी देवी दानव ने मरते को कि बचाया हो।
किञ्च किसी का आश्रय लेकर कोई ने सुख पाया हो॥
तो क्यों फिर घर रीता होता, बुजर्ग लोगों से भाई।
तथा कष्ट भी क्यों कोई को, यह चिन्ता मन में आई ॥ ३३ ॥

क्योंकि देह घर कोई हो वह जन्म मरण के चक्कर में।
रहता है, सुख दुःख न उसका ही होता उसके कर में॥
तो फिर औरों को वह कैसे क्या विपत्ति से रहित करे।
कटुक नीम्ब भी चिरायते के कड़वेपन को अहो हरे ॥ ३४ ॥

यह शरीर ही विपत्ति का घर जिसमें आपा मानि मरे।
इसके स्नेही कुटम्बियों में फँसकर चेतन दुःख भरे॥

एक बात आ गई याद जो तुमको यहां सुनाता हूँ ।
उसके द्वारा चित्त तुम्हारा यथार्थता पर लाता हूँ ॥ ३५ ॥

एक साधु जो जेष्ठ मास की गरमी से घबराया था ।
सजल कूप की बेला पर वह लेट लगाने पाया था ॥
दिवसास्त में नींद आने से स्वप्न उसे था यों आया ।
एक छबीली औरत से कि विवाह मनोहर हो पाया ॥ ३६ ॥

उसके बच्चा हुआ एक अब तीनों ही थे लेट रहे ।
थोड़ी देर बाद बनिता ने ऐसे सुमधुर वचन कहे ॥
लल्लू इधर किनारे पर है थोड़ा उधरसरक जावो ।
इस कोमल तनुवाले पर हे प्रिय उदारता दिखलावो ॥ ३७ ॥

साधु जहां खिसका कि कुंवें में गिरा चोट आई भारी ।
स्वप्न गेह का फलयह सच्चे घर का क्यों न कष्टकारी ॥
मानव तनु का सार साधुपन लूं ऐसी मन में आई ।
व्यथा दूर हो चली उसी क्षण अब तो रही नहीं राई ॥ ३८ ॥

अतः चाहता संयम लेना मैं अब इस भूतल पर हूं ।
पवन की तरह रहूँ विचरता क्यों एक जगह अड़ा रहूँ ॥
कृपा कीजियेगा अब मुझ पर ऐसी करताहूँ आशा ।
मेरे इस अध्यात्म कार्य में अड़चन होवे न जरासा ॥ ३९ ॥

रखा आप लोगों ने अपनी ओर से मुझे राजी था ।
कभी नहीं वह किया ताकि दुःखी होता मेरा जी था ॥

मैंने जिनको बार बार है भूरि तरह से कष्ट दिया ।
उसके बारे में मेरा है क्षमा चाहता यहां जिया ॥ ४० ॥

बोले लोग कि नहीं आज तक ऐसा कोई कार्य हुआ ।
जिसको सुनकर चित्त हमारा आज यहां पर अहो मुवा ॥
अब तक जो कुछ हुई प्रीतिधर वृत्ति तुम्हारे योगों की ।
आशा बल्ली फली और फूली उससे हम लोगों की ॥ ४१ ॥

किन्तु आज तो हन्त हो रहा अहो कुठाराघात यहां ।
जहां सुधा वर्षा करती थी विष की वर्षा हुई वहाँ ॥
जो क्षण भर के लिये पृथक् होने का लेते नाम न थे ।
हो जावो अब दूर सदा के लिये इसी से चित्त मथे ॥ ४२ ॥

अब तक तो थे बन्धु तुम्हारे हम सब अब फिर कौन रहें ।
तुम्ही कहो इस कठिन कार्य को हा हम कैसे ठीक कहें ॥
मैंने कहा कि भूल रहे हो दूर कहां हो पाता हूं ।
तुम सबलोगों के कि चित्त से चित्त मिलाने जाता हूं ॥ ४३ ॥

तुम तो हो ही बन्धु किन्त अब सब को कर बतलाऊंगा ।
जीव मात्र के साथ आज से नाता स्पष्ट दिखाऊंगा ॥
यह मेरा पक्का निर्णय है इस से बाच न आऊंगा ।
बार बार कर नम्र निवेदन आज्ञा तुम से पाऊंगा ॥ ४४ ॥

अब तक तो मेरी मनसा जैसा ही कर बतलाया है ।
नहीं आप लोगों ने मेरे मन को कभी दुखाया है ॥

इस अन्तिम कार्य में आप ने क्यों संकोच दिखाया है ।
इसी अचम्भे ने मेरे दिल को यहाँ दबाया है ॥ ४५ ॥

मेरा जो है मार्ग इसे ही महापुरुष अपनाते हैं ।
इस सर्वाङ्ग मनोहर पथ में रोड़ा क्यों अटकाते हैं ॥
जब कि आप मेरे हित कारक बान्धव लोग कहाते हैं ।
सोचो तो कि मोह वश होकर गीत कौन सा गाते हैं ॥ ४६ ॥

तब फिर वे सब बोले हम तो ठीक ठीक ही कहते हैं ।
हे भैया जी आप ही यहां व्यर्थ भाव मे बहते हैं ॥
फूलों पर रहने वाला क्या काँटों को तनु सह लेगा ।
गीतसुनें जो चित्त, वहाँ हरि की दहाड़ सुन दहलेगा ॥ ४७ ॥

अहो तुम्हारे रहने को क्या महल मिलेगा जङ्गल में ।
सोने के भी लिए पंलग न होगा शोचो निज दिल में ॥
ये रेशमी दुशाले भी क्या कोई तुम्हें उढावेगा ।
उस कलिहारी रात्रि में कहो दीप कहां से आवेगा ॥ ४८ ॥

होगा क्या न वहा पर देखो बिना नहाये ही रहना ।
घोड़ा गाड़ी कौन वहां पर पैदल ही श्रम हो सहना ॥
ऐसी ऐसी और अनेकों बातें संकट भरी जहां ।
हमको है चिन्ता कि तुम्हारा होगा क्या निर्वाह वहां ॥ ४९ ॥

##卐 हरि गीता छन्द 卐

मैंने कहा जन को जहाँ गुरु का प्रसाद मिले वहां ।
हो सूल भी सब फूल जंगल में स्वंय मङ्गल महा ।
गिरि दुर्ग का कन्दर वही मन्दिर मनोहर महल से ।
जिसकी मरम्मत की न चिन्ता सदा सुन्दर ही लसे ॥ ५० ॥

इस गीत में शाली अहो गाली स्वयं देती रहे ।
जिसको कि सन्तत मूर्ख मोही मनुज खुश दिल हो सहे ॥
उस सिंह की तो गर्जना में धैर्य का सन्देश हो ।
मैं हूँ यहां जैसे कि वैसे सब सदा निर्भय रहो ॥ ५१ ॥

शयो मही महती वहां जिसमें कभी खटमल नहीं ।
इस खाट पर तो मनुज को रहता सदा संकोच ही ॥
यह वस्त्र तो मैला कुचेला हो तथा फट जाय भी ।
होगा वहां आकाश सुबसन सुघड़ जो न घटे कभी ॥ ५२ ॥

दीपक निशा में वहाँ मेरे लिये हो मृदु किरण ही ।
जिसमें कि बत्ती तैल की भी हो जरुरत ही नहीं ॥
फिर रोज उठकर अहो होगा स्नान जिससे अद्य नशे ।
जिन राज शासन सरोवर के ज्ञान मय शुभ सलिल से ॥ ५३ ॥

गुरुदेव के चरणार विन्दो की सुभग केशर मिले ।
जिसका तिलक हो भाल पर मेरा उसी से दिल खिले ॥
आलोचनामय तैल मालिस भी सदा करता रहूँ ।
जिससे कि दूषण दूर होता रहे वैसी क्या कहूं ॥ ५४ ॥

होवे किसी को भी न बाधा इस तरह के भाव से ।
ईर्यासमिति में बैठ कर जाऊं सदा गैं च्याव से ॥
जाना जहां भी हो वहां तीर्थादि वन्दन के लिये ।
इत्यादि सुविधा पर विचार अहो जरा हैं क्या किये ॥ ५५ ॥

सब तरह से अच्छा समागम है जहां से जब जहां ।
फिर करुं क्यों आलस्य बोलो क्यों न मैं जाऊं वहां ॥
यदि आप हैं मेरे हितैषी क्यों मुझे हैं रोकते ।
इस अतिशयोत्तम कार्य करने से यहां सुविशदमते ? ॥ ५६ ॥

मैं तो कहूँगा आप सब भी यहां मेरा साथ दें ।
अभिराम हलवे में कहो तो क्यों न कोई हाथ दें ॥
हम लोग मिलकर चलें श्री गुरुदेव जी के निकट में ।
आदेश ले उनका रहें क्यों पड़े संकट विकट में ॥ ५७ ॥

卐 कुण्डलिया छन्द 卐

तुम ही जावो मान्यवर हमें न ऐसी शक्ति ।
हम तो घर मे ही करें समुचित भगवद्भक्ति ॥
समुचित भगवद्भक्ति जीव के पाप मिटावे ।
रहे दीप के पास उसे क्यों तिमिर सतावे ॥
हम हैं मानव किन्तु विहग वा पशु अहो नहीं ।
उनने ऐसा कहा कि जावो बन में तुम ही ॥ ५८ ॥

मैंने कहा क्या कह रहे होसुनों तुम हे धीर ।
बन में रहे थे क्या नहीं श्री राम रघुकूल वीर ॥

गाये चराते हुयेगोकुल को मुरारि कुमार ।
थे रहे जंगल में अहो है जानता संसार ॥ ५९ ॥

अत एव ही वे थे हुये जग में त्रिखण्डाधीश ।
है त्याग से होता नरोत्तम कह गये जगदीश ॥
हां त्याग से हो शून्य बनवासी सही वह ढौर ।
स्वच्छन्द होकर जो अधम जावे दुरित की ओर ॥ ६० ॥

पापी तरसता ही रहे पावे कभी न सुभोग ।
पाकर इन्हीं में फँस रहे यह अधम नर का रोग ॥
मक्खी यथा कफ में, अहो फिर जो कि उत्तम लोग ।
तत्काल हो खुश हाल नट की तरह ताकि नियोग ॥ ६१ ॥

तज किन्तु जूठन की तरह हो रहे इनसे दूर ।
भू भाग पर नर शूर उनकी प्रशंसा भरपूर ॥
हैं देव गणँ भी किया करते, आप मैं क्या चीज ।
है त्याग ही इस जीव के कल्याण का शुभ वीज ॥ ६२ ॥

##卐 कुण्डलिया छन्द 卐

बोले थे लाचार हो इस पर वे सब लोग ।
सही है कि परिणाम में दुःख प्रद है भोग ॥
दुःख प्रद है भोग समझाते सभी परन्तु ।
तज सकता है इन्हें नहीं साधारण जन्तु ॥

जिसकी हो भावना त्याग के सम्मुख होले ।
नहीं हमारी शक्ति अहो ऐसे वे बोले ॥ ६३ ॥

❀ ❀ ❀

卐 मानवता दुर्लभ है 卐

श्री जिन दीक्षा देवी की मुझ पर है ऐसी हुई दया ।
हूँ सनाथ अब मैं जिससे मेरा सारा भय दूर गया ॥
फिर तुम ही शोचो तुम या ये इतर जीव भी दुनियां के ।
हैं अनाथ या सनाथ हे नृप मैं क्यों कहूं वाक्य बांके ॥ १ ॥

आज वह गया क्यों यह आया इसे हटा उसको लाना ।
रोग हो रहा यह मेरे भी मुझको पड़े दवा खाना ॥
क्या कैसा मैं करूं कि जिससे आगे ऐसी बात न हो ।
इस चिन्ता की चिता में नहीं क्या जलता संसार कहो ॥ २ ॥

तृष्णा वश हो इतर जनों को हां छल बल से ठगता है ।
कभी जोर से उन लोगों का वित्त छीन कर भगताहै ॥
अगर न दें तो निर्दयता से उन्हें मारने लगता है ।
अपनी पाई भी जाने पर शोच चित्त में जगता है ॥ ३ ॥

ऐसे रौद्र भाव से मर कर रौरव में यह जाता है ।
मारण ताडन शूलारोपण आदिक दुःख उठाता है ॥

आयु रन्त में मर कर पञ्चाननादि का तनु पाता है ।
पर जीवों को मार मार कर दुर्धर पाप कमाता है ॥ ४ ॥
जाकर नरकों में जिससे फिर भी वह संकट पाता है ।
जिसे याद कर भय से तनु में यहां कम्प हो आता है ॥
शुभ लेश्या से मर कर पशु यदि देव देह पा जाता है ।
देख वहाँ भी पर वैभव को मन ही मन पछताता है ॥ ५ ॥

आर्त भाव से मर कर फिर एकेन्द्रिय होना पड़ता है।
दीर्घकाल तक अहो जहां पर बुरी तरह से सड़ता है ॥
निकल वहां से भी लट चिउटी भौरादिक का देह धरे ।
मरे और पैदा हो फिर फिर घोर वहां भी दु:ख भरे ॥ ६ ।

पञ्चेन्द्रियपन दुर्लभ है, उसमें भी मानवता ऐसी ।
पाषाणों के विपुल ढेर में मृदु चिन्ता मणि हो जैसी ॥
बड़े भाग्य से तुम हम जैसे को वह भी है मिल पाई ।
यथा चानचक ही बटेर अन्धे के हाथों में आई ॥ ७ ॥

भोगों में ही इसे लगा देना पूरा अजान पन है ।
भश्म के लिये नहीं जलाया जाता चन्दन का वन है ॥
फिर भी जो कोई संसारी हुआ मोह से है अन्धा ।
वह मैं क्या बोलूँ हे नरवर उलटा करता है धन्धा ॥ ८ ॥

डंके की चोट से सर्वदर्शी जन ऐसा हैं कहते ।
आत्मा ही यह परमात्मा बन जा सकता है हे नृपते ॥

अगर तिलाञ्जलि सब कर्मों को देकर धरे योगि बाना ।
उसी देह से भोगों में फँस करता है कुकर्म नाना ॥ ९ ॥

दूध तुल्य संसारी मानव,मक्खन जैसा त्यागी हो ।
घृत की भाँति बने परमात्मा जो कि न रोषी रागी हो ॥
जिसके संशोधनार्थ जग में अनशनादितप आगी हो ।
उसमे लगने वाला ही हे नराधीश बड़भागी हो ॥ १० ॥

श्री जिनवर की बाणी रुपी रईका कि जब योग मिले ।
हो प्रपञ्च तक्र से भिन्न यह मानव मक्खन तुल्य खिले ॥
बिना रई कृत मन्थन के वह कैसे क्या बाहर निकले ।
ड्राईवर के द्वारा ही तो देखो मोटर कार चले ॥ ११ ॥

जिनवर के रुप को मानना अत: आत्महित तरुका है ।
बीज जिसे सम्यग्दर्शन इस नाम से जगत् कहता है ॥
जिनवाणी पढ़ना सुनना सम्यग्ज्ञान कहता है ।
जिसके बल पर आत्म कल्पतरु खड़ा कर लिया जाता है ॥ १२ ॥

जिन कथनानुसार करना जल सिञ्चन जैसा होता है ।
ताकि महा छायायुत हो सन्ताम सकल वह खोताहै ॥
किन्तु हन्त यह तो जिनजी के कहने को ठुकराता है ।
भोग रोग यों जिन कहते हैं यह जिनमें कि लुभाता है ॥ १३ ॥

इस शरीर को ही मैं कहकर यह तो खूब सजाता है ।
और कौन हूं मैं ऐसा अभिमान इसे तो भाता है ॥

कहता है मैं हूं बलोढ्य मुझको हैं कौन दबा सकता ।
देव तथा दानव भी मेरे भुजबल आगे है थकता ॥ १४ ॥

मैंने मेरे भुज बल से कैसा क्या ठाठ जमाया है ।
हाथी घोड़ा ऊंट पालकी आदि मनोहर माया है ॥
आज्ञाकारी पुत्र तथा वह शीलवती शुभ जाया है ।
नोकर चाकर भी सब मेरे मानों मेरी छाया है ॥ १५ ॥

शोचता नहीं अहो कहां यह तुच्छ सम्पदा मेरी है ।
सार्वभौम का वैभव जाते भी न लगे कुछ देरी है ॥
सुनो एकथा भूप तुम्हारे जैसा ही सुखिया स्नेहिन् ?
अपर निशा में उसकी नीन्द हो गई दूर सहज से ही ॥ १६ ॥

ये मन मोहक युवतियां तथा मित्र वर्ग अनुकूल सभी ।
परिजन के भी मेरा कहना नहीं गिराते अहो कभी ॥
पर्वत जैसे गज तुरङ्ग मनतुल्य गमन करने वाले ।
बार बार यों निकलने लगे वचन सुखद मृदुगुण वाले ॥ १७ ॥

इधर आ गया एक चोर जो थोड़ा जानकार भी था ।
चुप न रह सका यह सुनकर उस बुद्धिमान जनका जीथा ॥
अवसरोचित वहां पर उसने थे ऐसे शब्द निकाले ।
आखें मिची जहां न वहां कुछ सुन लो तुम हे मतवाले ॥ १८ ॥

बस फिर तो था भूमि पाल का सहसा वहां घमण्ड मुवा ।
कुक्कुट बाचा तिमर दूर हो मानो रवि का उदय हुआ ॥

हृदय कमल खिल उठा भूप का सुगन्ध पैदा हुई बड़ी ।
यहां वहां सब जगह सुखप्रद सद्विचार कीलगी झड़ी ॥ १९ ॥

जिस पर हे मन आज नराधिप होकरतुम हो बैठ रहे ।
कल भी था कोई वैसे ही आगे इसको अन्य गहे ॥
ऐसे ही हो गये बहुतसे और बहुतसे होवेंगे ।
सुखी सुकृत से दुष्कृत से दुःखी होकर तनु खोवेंगे ॥ २० ॥

किन्तु भोग तज योग धरेंगे शान्ति सहज में पावेंगे ।
अजरामरपन को अपना कर फिर न जगत में आवेंगे ॥
इसे समझ पाये न कबी तुम भोगों में ही उलझ रहे ।
इसी सूत की उदेड़बुन में तुम ने हे मन कष्ट सहे ॥ २१ ॥

पर को अपना अस्थिर को स्थिर मूढ ? मानकर बैठे हो ।
मैं हूँ राजा राज्य विपुल यह मेरा यों तुम ऐठे हो ।
किन्तु गुवालु कासा गौरव सिर्फ मिला तुमको यह है ।
पर की गायें सदा चरावे गोवाला खुदकी कि कहे ॥ २२ ॥

रजक सुबह से सन्ध्या तक अपने घर पर रख पाता है ।
जो कि पराये घृणितपटों को धोने को ले जाता है ॥
मेरे पास वस्त्र इतने यों व्यर्थतया इतराता है ।
तथा पराई घृणित चीज पर घमण्ड तूँ यह लाता है ॥ २३ ॥

देह घृणा का गेह मलस्थल और ठाठ सब ऐसे हैं ।
कमला चपला यौवन सुरधनु स्वजन पथिकजन जैसे हैं ॥

हाथी घोड़े रथ आदिक ये इन्द्र जाल की तुल्य खड़े ।
अहो आँख के टिमकारे भर में न कहीं ये दीख पड़े ॥ २४ ॥

उद बुद बुद की तरह देखते देखते विघट जावेगा ।
देह न कोई यन्त्र मन्त्र फिर इसको रखने पावेगा ॥
हृष्ट पुष्ट जो दीख रहा है पलभर में मिट जावेगा ।
कुछ भी नहीं कर सकेगा तूं केवल रुदन मचावेगा ॥ २५ ॥

कल मैं एसा करुं और परसों ऐसा कर पाऊंगा ।
दुनियां के लोगों के आगे चतुराई दिखलाऊंगा ॥
कौन कहे कब मूर्ख ? तुझे वह आकर काल दबावेगा ।
धरा रहेगा विचार तेरा तूं तब झट उठ जावेगा ॥ २६ ॥

विलख रहेंगे कुटुम्ब के सब किन्तु अकेला जावेगा ।
इस वैभव में से धागा भी संग न लेने पावेगा ॥
तेरा अच्छा बुरा भाव ही सिर्फ साथ में जावेगा ।
और ठाठ यह सभी यहां का यहाँ पड़ा रह जावेगा ॥ २७ ॥

तूँ मेरा मेराकह विप्लव जिनके लिये मचाताहै ।
किन्तु कहो दिल में तेरे क्या विचार भी यह आता है ॥
कुटुम्ब को तो रहने दो यह तनु भी साथ न जावेगा ।
तुझसे एकमेक सा जो है यहीं पड़ा रह जावेगा ॥ २८ ॥

जिसको मल मल कर नित्यप्रति हे पुनीत तूँ धोता है ।
उलटा मैला हो यह तेरे श्रम को निष्फल खोता है ॥

नो द्वारों से मैल बहा करताहै सन्तत इसमें से ।
फिर भी तुझको घृणा नहीं इस पर होती है क्यों कैसे ॥ २९ ॥

जिसके पीछे लग कर तूने घोर पाप उपजाया है ।
तीन लोक की प्रभुता तज दर दर का भिक्षु कहाया है ॥
अब तक तूने गुरु वचनों को भी कैसा था ठुकराया ।
हन्तहन्त मोह ने तुझे बेदरदी से किधर दबाया ॥ ३० ॥

भोगोरग का विषइस चेतन के चित्त में व्याप्त होवे ।
गुरु गारुडि के सन्देश बिना उसकोकहो कौन खोवे ॥
ताकि नीम्ब सा कड़वा लौकिक धन्धा मीठा लगे इसे ।
निर्विकार होकर कोई मानव भी छूहे नहीं जिसे ॥ ३१ ॥

इन्धन सेपावक समान भोगों से तृप्त न तनु–धर हो ।
गुरु जन कहते हैं कि बात यह सदा तुम्हें भी याद रहो ॥
अग्नि शमन के लिये काष्ट तज जल सिंचन करना होवे ।
भोग छोड़ जो साम्य गहे शान्ति द्वारा संकट खोवे ॥ ३२ ॥

बहुत बार तूं देव योनि के भोग भोग कर आया है ।
उनके सम्मुख इन भोगों की तुच्छ मात्र यह माया है ॥
ओसबूंद से प्यास मिटे क्या सिन्धु नीर से जो न गई ।
यटों सन्तोष भाव अपनावे तोहो जाय जगद्विजयी ॥ ३३ ॥

कांने पौण्डे को बोदे तो सुन्दर सांठा बन जावे ।
अगर उसे चूषे, गलाफ फटने से दुःख घोर पावे ॥

वैसे ही इस नर शरीर से तप कर सदा सुखीहोवे ।
यदि भोगों में इसे गँमावे तो दुःखी होकर रोवे ॥ ३४ ॥

अहो त्याग है धर्म मनुज का कहते हैं सम्यग्ज्ञानी ।
बद्ध कोष्ठ वाला मानव तो होता है संकट खानी ॥
भाग्य वक्त्र से उदर कोश में जो आया, अर्पण कर दे ।
उसे भूमि पर निरीहपन से, चित्त नहीं फिर उस पर दे ॥ ३५ ॥

पूर्णा–पूर्ण रुप से त्यागी दो प्रकार हो दृढ बाहो ।
पहिला हो बनबासी जिसका सुन्दर तम समझोता हो ॥
शत्रु न मित्र जहां कोई हो, तृण कञ्चन समान होवे ।
भले बुरे पन को जिसका मन पर चीजों पर से खोवे ॥ ३६ ॥

गेही हो दूसरा जो कि निज कुल पोषण करने वाला ।
अपने श्रम से किन्तु न हो पर का शोषण करने वाला ॥
करने योग्य करे विवेकयुत विशद वृत्ति पर भाव दिये ।
कोई भी क्यों दुःखी होवे यह विचार जिसके कि हिये ॥ ३७ ॥

अपने अपने गुण पर्यय को लिये हुये सारी चीजें ।
तीन लोक कालत्रय मेंरहती हैं कभी न वे छीजें ॥
यों विचार कर न प्रमोद न विषाद किसी पर करता है ।
वह यतिनायक इस भूतल पर निजानन्द पद धरता है ॥ ३८ ॥

गुणज्ञ होकर वृद्ध विशेषज्ञों पर कष्ट न आने दे ।
बोध विहीन बालकों को उत्पथ में कभी न जाने दे ॥

आस्तिकता को अपना कर जो सदाचार में तत्पर हो ।
गेहि शिरोमणि वह मानव भी इस जग में आबाद रहो ॥ ३९ ॥

संक्लेशित सब संसारी जन जिसको दीखा करते हैं ।
जन्म मरण का रोग सदा से लियेहुये जो फिरते हैं ॥
उसकी सुन्दर औषधि जिन वचनामृत वितरण करता है ।
सबके लिये स्वयं भी उसका सेवन यति पति करता है ॥ ४० ॥

लोक मार्ग अपनाने वाला पथ्याशी जो जन होवे ।
रुग्ण संकटापन्न जनों के यताशक्य संकट खोवे ॥
करुणावश उनके दुःखों पर दुःखी हो दिल में रोवे ।
देखे जबकि निराकुल उनको तभी आप सुख से सोवे ॥ ४१ ॥

अड़चन कर निज तनु ही यति को दीखा करता है जग में ।
और न कोई विरुद्ध उसकी नजरों में उसके मग में ॥
अतः उसी से रह उदास वह आत्मकार्य को करता है ।
कितने ही हों वहां उपद्रव नहीं किसी से डरता है ॥ ४२ ॥

गृह मेधी लोक द्वयहित कर सुकार्य का अनुसरण करे ।
दृढता पूर्वक नीति मार्ग पर चलने से न कदापि टरे ॥
दुर्व्यसनों से दूर रहे फिर नहीं किसी से कभी डरे ।
कितने भी हो विरोध उन सबका डटकर परिहार करे ॥ ४३ ॥

गेहि धर्म अपवाद रुप यह कहा गया है आगम में ।
जिसका फल निपतन से बचना याद रहे यों तुम्हें हमें ॥

अन्त में न यति धर्म बिना हो सकता जगमें निस्तारा ।
जो निर्ग्रन्थ दिगम्बरपन को लियेहुए यह है प्यारा ॥ ४४ ॥

##卐 गीतिका छन्द 卐

मानव तनुका नहीं भरोसा जब पल का है ।
तब कैसे मतिमान कहो कल करना चाहे ॥
निज हित को यदि हुई प्राप्त गंगा फिर कैसे ।
न नहावे सन्तप्त हुआ मानव हो जैसे ॥ ४५ ॥

यदि भूखे के निकट अशन का भाजन आवे ।
हो प्रमाद वश रहे, नहीं भोजन कर पावे ॥
समय बीत जाने पर मन ही मनपछतावे ।
सावधान सन्तों के सम्मुख मूर्ख कहावे ॥ ४६ ॥

दोहा – हाथ जोड़ तब विनतियुत बोला श्रेणिकराय ।
गुणसागर हैं आप विभु मैं अवगुण समुदाय ॥ ४७ ॥

आप सरीखे यदि न हो तारण तरण जहाज ।
भववारिधि उस पार जन कैसे जावे आज ॥ ४८ ॥

उत्तम पुरुषपना धरे ननु तुम पद प्रयोग ।
जान सके इस बात को नही आज तक लोग ॥ ४९ ॥

मुझ पद को हैं कह रहे उत्तमता का हेतु ।
जगत जनों के है यही ज्ञान सूर्य पर केतु ॥ ५० ॥

यों मुनि पद रज ले चला श्री श्रेणिक भूमीश ।
इदर निजात्मध्यान में तन्मय हुए यतीश ॥ ५१ ॥

ॐ अन्तिम साधना ॐ

रही नहीं आशा कोई भी नासा दृष्टि उचित की थी ।
क्यों किसलिये कहां जाना यों आसन में स्थिरता ली थी ॥
करने को था शेष न जग में कर पर कर अत एव दिया ।
किससे क्या बोलना, शोच ऐसा उनने था मौन लिया ॥ १ ॥

तेरा मेरा रहा न कोई फिर यह मन किस पर जावे ।
सभी एकसी चीजें जग की इसको याद कौन आवे ॥
यों निर्द्वन्द्व अवस्था अपना कर होने थास्वस्थ चला ।
वह यतिवर जिसके लिये नहीं रह पाई थी यहां बला ॥ २ ॥

शोचने लगा निज मन में था यह आज्ञा जिनजी की है ।
इतर पदार्थों से चेतन ने व्यर्थ अहो यारी की है ॥
यही चोरटापन इसका इसको देखो अपाय कर है ।
ताकि संकटापन्न बन रहा, परथा यह सुखका घर है ॥ ३ ॥

सुवीचार की धानी से झट तैल तिलों में से जैसे ।
आत्म भाव को पृथक् किया रागादि विकारों से वैसे ॥
फेर एकत्व वितर्क नाम की ध्यान वह्नि से जला दिया ।
वाति नाम उत्कर को केवल बोध विशद सम्प्राप्त किया ॥ ४ ॥

卐 हरि गीताच्छन्द 卐

जो आज तक नर था वही अब नर शिरोमणि हो लिया ।
मन वचन तनु से क्योंकि उसने त्याग को आश्रय दिया ॥
नव कोटि संयम को यथोदितपूर्ण सम्पादित किया ।
संज्ञानभूषण निजात्मा का ही शरण समुचित लिया ॥ ५ ॥

जितना करे जो त्याग उतना मान्यजग में मानिये ।
है त्याग में ही महत्ता यों आप पाठक ? जानिये ॥
अम्बा तनय के लिए करती त्याग लौकिक है यतः ।
होती सदा स्मृति योग्य उसके लिए वह अनुभावतः ॥ ६ ॥

चरितेश ने उच्छिष्ट किसी तरह विश्वविभूति को ।
तज करगुणों के लिए कीस्वीकार सागर रीति को ॥
पढ़ सुन जिसे सब लोगसमझे त्याग के गुण को महा ।
इसलिए गुणसुन्दर कथानक यह यहां मैंने कहा ॥ ७ ॥

卐 कुसुमलताच्छन्द 卐

हिसार में श्रेणिक का जीवन चरितयथोचित पढ़ गया ।
गुणसुन्दर मुनि का सुनाम उस में आया जब एक नया ॥
सती सुजानी श्रीविका वहां बोली – क्या परिचय इनका ।
इस पर मैंने बतलाया वृत्तान्तमनोहर यह उनका ॥ ८ ॥

कवि की मंगल कामना

भू पर सदा सुभिक्ष हो न हो रोग या सोग।
राजा धर्म धुरीण हो सुखी रहें सब लोग॥
मन में श्री भगवान को स्मरण करे दिन रात।
लक्ष्य एक समभाव का बना रहे अवदात॥
कायरता तज हों दृढाध्यवसायी सब बन्धु।
बनें ताकि यह सुगमतर जो कि घोर जगदन्धु॥
नाना जन नाना भजन जिस को जो रुच जाय।
याद एक उसकी भली जहां न भोग सुहाय॥
हुनर अनेकानेक हैं किन्तु हुनर वह ठीक।
बात जहां इन्सान की होवे नहीं अलीक॥
काम कोप मद मोह पर जय पावे अभिराम।
व्यर्थ न खोवे जन्म को भजे वीर का नाम।

इति शुभं भूयात्